

DUE DATE SLIP**GOVT. COLLEGE, LIBRARY****KOTA (Raj)**

Students can retain library books only for two weeks at the most

BORROWER'S No	DUE DATE	SIGNATURE

THE
VIDYABHAWAN SANSKRIT GRANTHAMALA

143

SAMAYAMĀTRKĀ

OF

MAHĀKAVI KṢEMENDRA

Edited with

The 'Prakāśa' Hindi Commentary and Notes

By

Dr. RAMĀŚANĀR TRIPĀTHĪ M. A., Ph. D.

(Professor, Institute of Oriental Philosophy, Gandavan)

THE
CHOWKHAMBA VIDYABHAWAN
VARANASI-1

1967

First Edition

1967

Price Rs. 4-00

Also can be had of

THE CHOWKHAMBA SANSKRIT SERIES OFFICE

Publishers & Antiquarian Book-Sellers

P. O. Chowkhamba, Post Box 8, Varanasi-1 (India)

Phone : 3145

38185

परमअद्वेय विद्वद्वरेण्य
डॉ० सिद्धेश्वर मट्टाचार्य
के
वक्कमल्लो में सादर
समर्पित

भूमिका

संस्कृत का सम्पूर्ण काव्य साहित्य विषय और रचना-शैली के विकास की दृष्टि से तीन श्रेणियों अथवा युगों में विभक्त किया जा सकता है। प्रथम श्रेणी के काव्यों में 'रामायण' और महाभारत आते हैं। ये दोनों वैदिक और लौकिक सन्धिकाल के काव्य हैं। दूसरे युग का प्रतिनिधित्व अनेके कविकुत्तारण्व के कौस्तुभमणि महाकवि कालिदास की अमर रचनायें करती हैं। तीसरी श्रेणी में कालिदासोत्तर कवियों की रचनाओं को रखा जा सकता है। निश्चय ही शास्त्रीय और कालिदास के बीच में भी अनेक कान्धकारों ने संस्कृत-काव्योद्योग में अपनी रचना-श्रमाओं का आरोपण किया होगा, किन्तु आज वे अज्ञातप्राय हैं।

रामायण आदर्श श्रेणी का एक पवित्र ग्रन्थ है। उसमें समाज की नानाविध परिस्थितियों का एकसाथ समावेश है। महाभारत तो भारतीय ज्ञानरत्नों का सौरमागर ही ठहरा।

महाकवि कालिदास की अमर कृतियाँ अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रखती हैं। संस्कृत काव्यान्त में उनकी अमृत-कृतियों की उठती हुई तरङ्गों के आकर्षण को देखकर घटपि बहुत से परवर्ती कवियों ने उनकी पद्धति का अनुकरण करने का पूर्ण प्रयत्न किया, किन्तु वे उसकी छाया को भी उस निपुणता में स्पृष्ट न कर सके। कालिदास की साहित्यिक श्रेष्ठता एवं योग्यता भावों को अभिव्यक्त करने में है। उन महाकवि का भाव-विधान बहुत ही सुसंगठित, सत्य, मौलिक, समाकर्षक एवं स्पष्टोक्ति है। उन्होंने व्यापक पर—रचना-विधान पर—उतना बल नहीं दिया है। आज के सरस-मागर में पाठक-कमलों को विकसित करने वाले बहिर्दिग्दर्शन के पास भला दार्ष्टिक आकर्षक रचनाविधान के लिये समय ही कहाँ ने पा ? अथवा शरीर के बाह्यपक्ष का उनके यहाँ कोई मूल्य न था, उस पर उनकी कोई मात्सा न थी—

में जिनो थी। मुह एव तिथि के बीच काल का अन्तर प्रायः २५ वर्ष होना चाहिये। इस प्रकार यह निश्चित होता है कि 'क्षेमेन्द्र' उनके समय में प्रायः २५ वर्ष बाद—९९० ई० के सन्निहित काल में हुए होंगे। उनकी मृत्यु सम्भवतः १०६५ ई० के अनन्तर हुई थी। अपने जीवन के उत्तरकालाल में वे सम्प्राप्ति होकर 'त्रिपुरेश' पर्वत पर मृत्युपर्यन्त रहे और वहीं उन्होंने १०६५ ई० में 'दशावतारचरित' लिखा था। यह 'कलश' का शासनकाल था। 'कविकण्ठाभरण', 'औचित्यविचारचर्चा', 'मुवृत्तविलोक' और 'समयमातृका' की परिसमाप्ति पर उन्होंने 'अनन्त की प्रशस्ति की है और अपने प्रबन्ध की पूर्णता उनके राज्योदय काल में बतलायी है। इन्होंने पिता पुत्र 'अग्न' (१०२८-१०६३ ई०) तथा 'कलश' (१०६३-१०८९ ई०) के राज्यकाल में 'क्षेमेन्द्र' की जीवनलीला व्यतीत हुई। अतः उनका काल एकादश शताब्दी का पूर्वार्ध और कुछ उत्तरार्ध मानना व्यापसंगत होगा।

२ : 'क्षेमेन्द्र' की वंश परम्परा :—

'क्षेमेन्द्र' 'मिन्हु' के पौत्र तथा 'प्रकासेन्द्र' के पुत्र थे। ये लोग तत्कालीन राजा के अमात्य पद पर प्रतिष्ठित थे। 'भारतवज्ररी' में 'क्षेमेन्द्र' ने अपने पिता की लम्बी प्रशस्ति लिखी है, जिसमें उनकी विनाल सम्पत्ति तथा उदारगणना से भण्डित दानशीलता का परिचय प्राप्त होता है। 'क्षेमेन्द्र' सम्प्रदाय परिवार के मुनी कवि थे। इनका पुत्र 'नामन्द' योग्य पिता का योग्य पुत्र था।

३ : 'क्षेमेन्द्र' का प्रारम्भिक जीवन :—

'क्षेमेन्द्र' ने अपने प्रारम्भिक जीवन की साधकदण्ड में व्यतीत करते हुए माता कवि-जीवन को मुमुक्षु आशार-शिक्षा के रूप में उसे निर्मित किया। 'कविकण्ठाभरण' में उनके द्वारा कवित्वशक्ति आशिकम्प से स्वाभाविक बन गयी है और आशिकम्प से अजित। अजित कवित्वशक्ति सरस्वती की उपासना—मन्त्र-अभ्यास के माध्यम से मानव के ज्ञान-ज्ञान अभ्यास से अजित की जानी है। 'क्षेमेन्द्र' की कवित्वशक्ति स्वाभाविक की अपेक्षा अजित अधिक है। इसका निर्देश स्वयं उन्होंने भी दिया है :—

कृत्वा निरचलदैवपीरुपमयोपायं प्रसूत्यै गिराम् ।

क्षेमेन्द्रेण यत्नितं शुभफलं ते नास्तु काव्याधिनाम् ॥

—कवि० ४।३

उनके जीवन का अधिकांश समय व्यक्तियों के ही मध्य बीता था । उन्होंने नीरस तार्किक और वैयाकरण का अधिक सहवास नहीं किया था । इन लोगों को उन्होंने कविता के विकास का विमल कहा है । 'कालिदास के साहित्यामृत का उन्होंने भूरि-भूरि पान किया था ।' कोश, गीत, गाथा तथा देशी भाषाओं के काव्यों का उन्होंने मली-भाति अध्ययन किया था । उनकी मित्रमण्डली उज्ज्वल चरित्र की थी और स्वयं वे भी बोलने तथा परिधान में भव्य थे । उनका अवशिष्ट समय सामयिक नाटक, अभिनय देखने एवं संगीत-श्रवण में व्यतीत होता था । अच्छे कवियों और लेखकों के अपने यहाँ आ जाने पर अथवा वही भी मिल जाने पर वे उनका आदर-सम्मान तथा आर्थिक सहायता करते थे । लोकाचार का उन्हें अच्छा ज्ञान था । एवाम्त में कथाओं और कहानियों को सुनने के वे अम्यासी थे । चित्रकला की आलोचना के लिये भी उनके पास सूक्ष्म-दृष्टि थी । दश-दशान्तर में भ्रमण कर वहाँ की प्रथाओं, विशिष्टताओं एवं मानव-भावनाओं का अध्ययन उनकी अपनी विशिष्टता थी । भारत का विशाल मानचित्र उनकी दृष्टि में रहता था । 'समयमातृका' में वेदस्था 'कच्छाली' के जीवन-वर्णन के समय अपने इस वैशिष्ट्य का पर्याप्त प्रमाण उन्होंने प्रदर्शित किया है ।

१. न तार्किक नेबलशान्दिक वा कुर्वाद् गुरु सूक्तिविहासविघ्नम् ॥

—कवि० १।१५

यस्तु प्रवृत्त्यदमसमान एव कष्टेन वा व्याकरणेन नष्टः ।

सर्वेण दग्धोऽनलधूमिना वाग्म्यविद्वक्त्रेण, सुखविप्रबन्धैः ॥ —वही १।२२

रसेन पुनस्तार्किकगन्धमुष्पम् ॥ —वही १।२९

२. पठेत् समस्तान् किञ्च कालिदासकृतप्रबन्धानितिहासदर्शो । —वही १।१९

३. गीतेषु गाथास्वेष देशभाषाकाव्येषु दद्यात् सरसेषु कर्पणम् । —वही १।१७

४. नाटकाभिनयप्रेक्षा शृंगारालङ्किता मतिः ।

कवीनां सम्मवे दानं गीतेनातमाविदासनम् । —वही २।५

४ : शेमेन्द्र का धर्म :—

शैवदर्शन एवं धर्म की केन्द्रस्थली काश्मीर की पावन भूमि में रहने के कारण शेमेन्द्र के पिता शैव धर्म के कट्टर अनुयायी थे। भगवान् शङ्कर की पूजा में वे केवलानन्द की अनुभूति करते थे। हाथों से भगवान् शङ्कर के लिङ्ग अथवा प्रतिमा का गाढानिङ्गन करते हुए उन्होंने अपने प्राणों का परित्याग किया था—

पूजयित्वा स्वयं शर्वं प्रसरद्वाप्सनिर्गतः ।

गाढ दोर्भ्यां ममालिङ्ग्य यस्तत्रैव व्यपद्यत ॥ —भारतमञ्जरी

शैव पिता के संरक्षण में रहने के कारण 'शेमेन्द्र' अपने जन्म से शैव थे। पिता के संरक्षण से शेमेन्द्र में शैवमत का जा बीज अकुरित हुआ था, निश्चय ही वह शैव आचार्य 'अभिनव' गुप्त की शिक्षा एवं सहवसति से द्विपत्रित एवं पङ्कवित हुआ होगा। किन्तु कालान्तर में वे परम भागवत आचार्य "सोमपाद" के प्रभाव में आकर वैष्णव धर्म की ओर आकृष्ट हुए और समस्त वैष्णव धर्म को ही अङ्गीकार कर लिये—

श्रीमद्भागवताचार्यसोमपादाब्जरेणुभिः ।

धन्यतां यः परां प्राप्तो नारायणपरायणः ॥ —भारतमञ्जरी

"बृहत्कषामञ्जरी" में भी उन्होंने ऐसा ही भाव व्यक्त किया है (बृहत्कषामञ्जरी १९।३७) ।

शेमेन्द्र परम भागवत आचार्य "सोमपाद" की आचार्य "अभिनवगुप्त" की अपेक्षा अधिक आदर सम्मान प्रदान करने थे। भागवत धर्म की स्वीकार करने के अनन्तर वे आजीवन इसी के अनुयायी बने रहे। परिणामस्वरूप उन्होंने अपने सम्स्त जीवनकाल में "दशावतारचरित" की रचना की।

भागवत धर्म की स्वीकृति करने पर भी शेमेन्द्र उनके कट्टर अथवा अन्ध अनुयायी न थे। वे अन्य मतों का भी अध्ययन तथा समादर करते थे। उनकी दृष्टि में सभी देवों को समान स्थान प्राप्त था—"साम्य सर्वेश्वरस्तुतो" । (कवि०

२।१९)। समन्वय की उनकी प्रवृत्ति विलक्षण थी। वे उदार आशय के एक सहृदय कवि थे। अपने इन्हीं सद्गुणों के कारण प्रौढावस्था में बौद्ध-मत का भी उन्होंने अनुशीलन किया था। इन सबका उनकी लेखनी पर भी व्यापक प्रभाव पड़ा। उनकी "बोधिसत्त्वावदानरत्नज्ज्ञता" में भगवान् बुद्ध के प्राचीन ज्ञानों से सम्बद्ध पारमितामूर्चक आख्यानों का पद्यबद्ध वर्णन है। 'हीनयान' में जो स्थान जातकों का है, वही 'महायान' में अवदानों का है। अवदान के माने हैं—शुभचरित।

अपनी रचना के डेढ़ सौ वर्षों के भीतर ही इसका दिम्बती भाषा में गौरवपूर्ण अनुवाद हुआ। एक वैष्णव कवि की हृति होने पर भी बौद्ध समाज में इतना आदर पाना 'क्षेमेन्द्र' को प्रौढशास्त्रचौली एष उक्त गुणों का पर्याप्त द्योतक है।

५ : क्षेमेन्द्र की शिक्षा :—

जैसा ऊपर निर्देश किया गया है, "अभिनवगुप्त" इनके साहित्यिक गुरु थे। "अभिनवगुप्त" एवं 'सोमपाद' से इन्होंने आध्यात्मिक विद्या का परिशीलन किया था। यद्यपि 'क्षेमेन्द्र' अपने गुरु के रूप में इन्हीं दो जानकों का निर्देश करते हैं, तथापि इनके अतिरिक्त और भी उनके गुरु रहे होंगे, जिनसे उन्होंने अन्य मतों एवं दर्शनों का अध्ययन किया होगा। वे प्रत्येक व्यक्ति को सर्वविध विद्वता प्राप्ति के लिये सब के शिष्यत्व-स्वीकृति की सम्मति देते हैं :—

"द्युपरि सर्वशिष्यता ॥" (कवि० २।१४)। कवि "गङ्गाक" को उन्होंने अपने उपाध्याय के रूप में स्मरण किया है।

६ : क्षेमेन्द्र का साहित्यिक जीवन :—

अपने साहित्यिक जीवन के प्रयात में क्षेमेन्द्र एक अनुवादक मात्र प्रतीत होने हैं। कवित्वशक्ति तो उन्हें शत-शत अभ्यास के अनन्तर ही प्राप्त हुई थी। अधिक मयार्ष और किञ्चिच्छु वात तो यह है कि क्षेमेन्द्र कवि बने थे। उनमें नैसर्गिक भावोत्पन्न कवित्व शक्ति एवं नवनवोन्मेषशक्ति की प्रतिभा का पहले पहल अभाव था। किन्तु 'क्षेमेन्द्र' की बड़बती इच्छा थी एक सार्वभौम

कवि बनने को। परिणामस्वरूप उन्होंने पैशाची भाषा में लिखित “मुत्ताब्ज” को “बृहत्कथा” का “बृहत्कथामञ्जरी” के नाम में संस्कृत में पद्यानुवाद किया। जैसा वे कहते हैं—इस ग्रन्थ के ये प्रथम अनुवादकर्ता थे। इस अनुवाद के जतनर अवश्य ही उनकी लेखनी की कविता-क्षेत्र में विचरण करने के लिये शक्ति प्राप्त हुई होगी।

बाद में उन्होंने “रामायणमञ्जरी” “भारतमञ्जरी” एवं “वाल्मीयनसूत्र” लिखा। उनके इन ग्रन्थों में वाल्मीकीय रामायण, महाभारत तथा कामधूत का मधोय प्रस्तुत किया गया है। इसके साथ ही वे अन्य विद्वानों का भी ज्ञानार्जन करते रहे। उनके ग्रन्थों में प्रकट है कि मणित, ज्योतिष, औषधशास्त्र, शल्य-चिकित्सा, राजनीति, ज्ञानशास्त्र, नैष, वैज्य तथा बौद्धदर्शन एवं धर्म तथा मन्त्रशास्त्र भी उन्हें सभी भाति परिज्ञात थे। “भारतमञ्जरी” के लिखने के जतनर ही संभवतः वे ‘व्यासदास’ के विरुद्ध से विभ्रान्त हुए होंगे।

७ : शैलेन्द्र का शब्दमण्डार :—

शैलेन्द्र का शब्द-भण्डार विद्यान्व है। उनकी शब्दमकननशक्ति की देखने से परिज्ञात होता है कि करने समय तक के उत्तमव्य समस्त कोश ग्रन्थों का उन्होंने सम्पूर्ण गाडानुगीत किया था। अप्रसिद्ध में भी अप्रसिद्ध शब्द उनकी दृष्टि में प्रमत्त करते रहते थे और अवसर मिलते ही यथास्थान निविष्ट कर दिये जाते थे। किसी भी दृश्य अपना नाव की करने शब्दमण्डार की सहायता से वे नदी ही मुगमता से विविध कर सकते थे। वस्तुतः वे शब्दकवि थे। उनकी रचनावली के अविकारा शब्द दुर्बोध्य हैं और संस्कृतवाङ्मय में उनका छावित्क प्रयोग ही उत्तम होता है। शब्दकाठिन्य के दुर्द्विगम्य विख्यात में बहुराः उपन्य, मनोहारिणी उपमा-व्यङ्ग्यकी शैलेन्द्र के साहित्य की अनुपम ढंग से गुरमित कर नावविहता का आकर्षक वावरण प्रदान करती है। तत्कालीन समाज में प्रचलित विभिन्न क्रिया-वृत्तों अथवा दैनन्दिन जीवन के दृश्यों से वे उपमाएं संगृहीत की गई हैं। उपमा के राज्य में ‘शैलेन्द्र’ की उत्तमर वापन दिया जा सकता है।

८ : क्षेमेन्द्र के समय का वातावरण :—

क्षेमेन्द्र के समय काश्मीर का वातावरण कविता जैसी कोमल बला के अनुशीलन के सर्वथा अनुपयुक्त था। काश्मीर के इतिहास में वह युग असन्तोष, पड़यत्न, नैराश्य तथा रक्तपात का काल था। तत्कालीन राजा 'अनन्त' जिसका निर्देश 'समयमातृका' की परिसमाप्ति पर भी किया गया है, स्वयं मानसिक दुर्बलता तथा बौद्धिक सिपिलता का पात्र था। सभी तो उसने १०६३ ई० में अपने ज्येष्ठ पुत्र 'बल्लभ' को राज्य द्धर भी छोड़े ही वर्षों के अनन्तर पुनः उसे ग्रहण कर लिया। इसके बाद वह १०७७ ई० में राज्यकार्य से अवस्य हो विरत भुजा और कुछ ही वर्षों के अनन्तर १०८१ ई० में आत्महत्या कर ली। उसकी विदुषी महारानी 'सूर्यवती' भी अपने पति की चिता पर सनी हो गयी।

कवि क्षेमेन्द्र अपने युग के अद्यान्त वातावरण से इतने असन्तुष्ट तथा मर्महिण थे कि उसे सुधारन में तथा पवित्र और विस्तृत बनाने के लिये एक दुष्टता के स्थान पर शिष्टता की भावना को हट करने के निमित्त अपनी द्रुतगामिनी स्त्रैणी को काय के नाना अङ्गों की रचना में लगाया। उन्होंने भुक्त-पुष्ट का विवेचन कर जीवन में साथ उसके सम्बन्धों को बड़ी ही समुचित रीति से पटिन किया। जीवन की अभ्युन्नति की दृष्टि में रक्त कर मुमार्ग एवं कुमार्ग की बुराई-भलाई का परीक्षण किया। सीधी बोट करन वाली व्यङ्ग्यात्मक शैली में दैन्य, कापल्य, शोषण, अस्मानता आदि सामाजिक प्रवृत्तियों पर समय प्रहार किया। उनके नीति विषयक उपदेशात्मक अथवा व्यङ्ग्यात्मक वाक्यों का एकमात्र उद्देश्य था लोगों को कुमार्ग से हटाकर मुमार्ग पर लाना। वस समाज के इसी उपकार के लिये उनकी जीवनी सर्वदा सघर्षरत रही—

क्षासेन लज्जितोऽत्यन्त न दोषेषु प्रयते ।

जनस्तदुपकाराय ममाय स्वयमुद्यमः ॥ —देवोपदेश, १।४

उनकी कृतियों में माय्य की अवश्यमाविता की स्वरूति होने पर भी पुष्ट्यार्थ की सर्वोपरि स्थान दिया गया है। इस प्रकार के इनके ग्रन्थों में अद्भुत मनोविज्ञान की देखकर आश्चर्य होता है।

९ : क्षेमेन्द्र की कृतियाँ :—

‘क्षेमेन्द्र’ की कृतियों को काल क्रमानुसार इस प्रकार से रखा जाता है :—
 (क) बृहत्कथामञ्जरी, भारतमञ्जरी, रामायणमञ्जरी, (ख) यवनपञ्चाशिका
 और मुवुत्ततिलक (ग) विनयवल्ली, लावण्यवती, मुनिमतमीमांसा, नीतिहता,
 अवदानकल्पलता, जयसरसार, ललितरत्नमाला, मुक्तापलिकाव्यम्, बालस्यायन-
 सूत्रसार और औचित्यविचारचर्चा, (घ) पञ्चकादम्बरी, शशिब्रह्मकाव्यम्,
 देशोपदेश, नर्ममाला, चित्रभारत, कनकज्ञानको, अमृततरंग, चतुर्वर्गसंग्रह और
 कविकण्ठाभरण, (ङ) दर्पदलन, कलाविलास, समयमातृका, मेघसखकोपदेश
 (च) दशावतारचरित और चारुचर्या ।

कुछ लोग ‘लोकप्रकाश’ को भी उन्हीं की कृति बतलाते हैं । किन्तु यह
 मुगलकालीन किये अन्य व्यक्ति के द्वारा लिखित प्रतीत होती है । इसमें अनेक
 परसिद्ध शब्द और मुद्राप्रधानी नाम जैसे—सन्ध्यामन्दयो, रत्नाञ्जलि, मीर आदि
 उल्लिखित हैं । इनके अतिरिक्त कविकणिका, क्षेमेन्द्र-प्रकाश, दानव रिजात, नीति-
 कल्पतरु, राजावली, भौकप्रकाश, व्यासाष्टक आदि ग्रन्थ भी उनके द्वारा विरचित
 बतलाये गये हैं । ‘कविकणिका’ का उल्लेख स्वयं उन्होंने ही ‘औचित्यविचारचर्चा’
 में किया है—(इत्यादि वाक्यालंकारो क्षेमेन्द्र कविकणिकाम् । १।२) ।

(क) बृहत्कथामञ्जरी :—

‘बृहत्कथामञ्जरी’ ‘गुणादय’ की बृहत्कथा का सार है । इसमें १८ पञ्चक
 और ७५०० पद्य हैं । कवित्व की दृष्टि से यह उत्तरग बड़ा ही पाण्डित्य-
 पूर्ण है । किन्तु इसकी भाषा में दुर्बोधता और वर्णनों में जटिलता है । इसकी
 कथामें कहीं-कहीं बहुत ही सश्लिष्ट कर दी गयी हैं । इन न्यूनताओं के रहते हुए
 भी जहाँ-जहाँ गारो सौन्दर्य और राजकुमारों के शौर्य-बलप्रदर्शन के प्रसंग आये हैं
 वहाँ-वहाँ ‘क्षेमेन्द्र’ ने बड़े ही मर्मग्राही एवं सरस वर्णन दिये हैं ।

(ख) औचित्यविचारचर्चा :—

‘औचित्यविचारचर्चा’ में क्षेमेन्द्र लिखते हैं कि ‘औचित्य’ ही रस का जीवन-
 भूत है—प्राण है—बहु काव्यास्वादन में अमस्काराधायक है :—

औचित्यस्य चमत्कारकारिणश्चारुचर्चणे ।

रमजीवितभूतस्य विचारं कुरुतेऽधुना ॥ —औचि० ३

जो जिसके सरस हो, जिसने मेल मिले उसे उचित कहने हैं और उचित का ही भाग 'औचित्य' है ।—

उचितं प्राहुराचार्याः सदृशं किल यस्य यम् ।

उचितस्य च यो मायस्तदौचित्यं प्रचक्षते ॥ —वही० ७

यद्यपि 'औचित्य' की सर्वातिशायिनी महत्ता का प्रतिपादन क्षेमेन्द्र ने ही किया है । इन्होंने ही "औचित्यविचाररक्षा" लिखकर औचित्यन्य काव्यनिरास का व्यापक रूप स्पष्ट किया है । औचित्य को रसमिष्ट काव्य का जीवित कहा है — "औचित्यं रससिद्धस्य स्थिर काव्यस्य जीवितम् ।" (औचि० ५) तथापि औचित्य के संबंध में नवीन उद्भावक के रूप में क्षेमेन्द्र को नहीं माना जा सकता । औचित्य की चर्चा नान्याचार्यों 'भरत' एवं 'आनन्दवर्धन' आदि आचार्यों ने भी की है और 'अनौचित्य' को रसमङ्गल का कारण माना है । निश्चय ही क्षेमेन्द्र ने पूर्वाचार्यों के औचित्यविषयक अभिप्राय को देखा होगा । इतना होने पर भी वे अपने को "औचित्य" के नवीन उद्भावक के रूप में ही इङ्गित करते हैं ।—

क्षेमेन्द्र इत्यश्रयनाव्यकीर्तिरश्चक्रे नवीचित्यविचारचर्चाम् ॥ —औचि०

ठीक है औचित्य को काव्यतत्त्व के रूप में सर्वोच्च स्थान देने में क्षेमेन्द्र अवश्य ही नवीन हैं ।

(४) 'कविकण्ठाभरण' :—

'कविकण्ठाभरण' में उन्होंने यदित्यप्राप्ति, शिक्षा, चमत्कृति गुणशेषबोध, परिचयप्राप्ति का वर्णन किया है । इसमें पाँच सन्धियाँ हैं । एक-एक सन्धि में

१ अवेपजो हि वेपस्तु न शोभा जनविन्यति ।

मेतन्नोरमि वन्ये च हारयावेवोपजायते ॥ —नाट्यशास्त्र २३।६९

अनौचित्याहने नान्द्रसमङ्गम्य कारणम् ।

औचित्योपनिबन्धस्तु रसस्योपनिषत् परा ॥ आन० ॥

एक एक विषय का विश्लेषण किया गया है। इस एक ग्रन्थ से ही क्षेमेन्द्र के व्यक्तित्व एवं उनकी कृतियों के विषय में एकसाथ पर्याप्त सामग्री उपलब्ध होती है।

(ब) सुवृत्तनितक :—

इस ग्रन्थ में छन्दवियक विश्लेषण किया गया है। इस में तीन विभास (चम्पास) हैं। इस एक पुस्तक के चम्पास से ही कोई भी व्यक्ति छन्दशास्त्र का मर्मज्ञ हो सकता है।

(ङ) समयमातृका :—

क्षेमेन्द्र ने 'समयमातृका' की रचना १०२० ई० में की थी। इसमें यह सिद्ध हो जाता है कि उन्होंने इस प्रबन्ध का निर्माण तब समय किया था जब कि उनकी कविशक्ति एवं अनुभव पूर्ण परिष्कृत हो चुका था। इस ग्रन्थ के बाद उन्होंने कवच 'मन्त्रसेवकापदेश' 'दशावतारचरित' और 'वाक्चर्पा' की रचना कर अपनी जीवन-शीला समाप्त की थी। इस प्रकार यह प्रबन्ध कवि की समय प्रौढ़ि को एकसाथ समेट हुए पाठका के समक्ष अपनी शक्ति का प्रदर्शन करता है।

'समयमातृका' आठ समयों में विभक्त छ। सो पैंनीस श्लोकों का एक प्रबन्ध-जन्य है। क्षेमेन्द्र ने इसके निर्माण का एकमात्र उद्देश्य ब्रह्मात्मों, कृतिनियों तथा विद्या में श्रमार्थों—भक्तियों की सम्पत्ति रक्षा ही बतलाया है — श्रीमता मूर्तिर-हायै रचिषोऽयं मिमन्त्रिषुः"। जैसा ऊपर निर्देश किया गया है, क्षेमेन्द्र की लेखनी का एकमात्र उद्देश्य सहृदय व्यक्तियों का मनोरञ्जन ही न होकर समाज में प्रवृत्त शुश्रूषिणों, वनाचारों, व्यवहारों तथा वञ्चकता का उन्मूलन कर

१. सवसरे वञ्चविरो पंगुक्कादिवासरे ।

श्रीमता मूर्तिरहायै रचिषोऽयं मिमन्त्रिषुः ॥ समयमातृका ॥

यहाँ पर स्थानीय सवसर का निर्देश किया गया है, जिसका अनुसार १०२० ईस्वीवर्ष समयमातृका का काग है।

स्वस्य वातावरण का निर्माण भी था। उन्होंने ग्राम के पटवारी से लेकर जज के कार्यों तक की एकसमान जालीचना की है—

उत्कोषारब्धसधट्टैः पृटरथादिभिः ।

सादिष्टाभीष्टसपत्तिर्जपाह जयपट्टम् ॥ २४२ ॥

फथायस्तु :—

'नववीवना मन्दोन्मत्त वेदया 'बलावती' और बूढ़ा बुद्धिहीन 'बड्ढाली' के द्वारा फैके गये जाल में—पट्टयन्त्र में—सत्ताहीन वादमीर-भूमि के प्रसिद्ध धनी व्यवसायी "पट्ट" का स्वत्ववयस्क वाचक "पट्ट" मान्य फैसला जाता है। पहले तो ये दोनों उसका बहुत जादर-सम्मान करते हैं। किन्तु कुछ समय के अनन्तर, उत्तराधिकार में प्राप्त हो उसकी सम्पूर्ण पैतृक सम्पत्ति को अधिकरणपत्र (दस्तावेज) पर 'बलावती' के नाम से लिखवा कर एवं उसके दिशा में भी एक लाख मुद्राएँ ठग कर, उसको फटा कम्बल का टुकड़ा पहना कर अपने घर से निकाल देती है। इसने अतिरिक्त क्या की पृष्ठभूमि के रूप में 'बड्ढाली' का सम्पूर्ण परिवार, प्रदोषकादमन, राग-भेद-वर्णन आदि भी बड़ी ही विदग्धता के साथ वर्णित हैं, जो कथावस्तु को अगसट करने में पूर्ण सहायक बनते हैं।

भाषा :—

'समयमातृका' की भाषा अधिकांश स्थलों पर क्लिष्ट एवं दुर्बोध है। इसके निर्माण में 'क्षेत्रेन्द्र' ने वर्तमान कवित्वशक्ति की अपेक्षा उनका महान् शोध-ज्ञान अधिक सहायक हुआ है। बहुधा ये अप्रसिद्ध शब्दों का भी व्यवहार करते हैं, यथा :—तूस्ती, परट्टमाला, त्रिविर, अवसद्धिवा, भाटी आदि। जहाँ एक ओर क्लिष्ट, यत्नचलित शब्दों के व्यवहार से 'समयमातृका' प्रबन्ध दुर्बोध हो गया हो, वहीं कवि 'क्षेत्रेन्द्र' ने श्लोकों की विषयवस्तु एवं विवक्षित रचनावली से उसकी दुर्बोधता का जटिलता में संयोग करा दिया है। उदाहरण के लिये यहाँ एक दो श्लोक पर्याप्त होंगे :—

(क) निष्ठासितुं हृदयसंचिततोष्यैरे

संदर्शितप्रकटकूटधनोपचारे ।

लोभान्त्वयानपचयैः पुनरावृतेव

प्रातः किमु प्रसभमर्थ्यवशादनर्थः ॥ ११२० ॥

(स) कैर्नित्यसंभवनिजं वणिजं त्यजन्त्या

यान्त्या तृणज्वलनदीप्तिनियोगलक्ष्मीम् ।

नष्टे सुवस्त्रविभवे विरते पुराणे

जातस्तव स्तवकितोभयलाभभङ्गः ॥ ११२१ ॥

अतिशय पाणिन्य से मण्डित 'समयमातृका' की भाषा से प्रारब्ध काव्य का निर्वाह भले ही हो गया हो किन्तु भाषा में न तो प्रवाह है और नहीं प्रसाद ही । जिस उद्देश्य की दृष्टि से रत्न वर यह प्रबन्ध लिखा गया उसकी भी भली-भाँति पूर्ति नहीं हो पायी । इसके लिये तो 'दिशोपदेश' और 'वर्ममाला' की सरल शब्दावली अपेक्षित थी ।

इतना होने पर भी 'समयमातृका' न केवल दोमेन्द्र के ही अपितु समस्त उपदेशारमक हास्य-व्यङ्ग्य काव्यों में अनुपम है । अटवी में सरस्व मधुर निर्झर की भाँति बोमज्जकान्तपदावली से यह मन्त्र-मन्त्र-सर्वत्र पाठको का पूर्ण मनोरंजन करती है । 'कलावती' के प्रसाधन को कवि एक ही श्लोक में किननी मधुरता के साथ अभिव्यक्त करता है :—

कपोले कस्तूरी स्फुटबुदिलपत्राङ्कुरलिपि-

ललाटे कार्पूरं तिलकमलकालीपरिसरे ।

तनी लीना हेमश्रुतिपरिचिता दुङ्कुमरुनिः

स तस्याः कोप्यासील्ललितमधुरो मण्डनविधिः ॥ ३११० ॥

सौमित्रः उरमाओ एवं श्रुतियों के बहुधा प्रयोग तथा हास्य-व्यङ्ग्यपूर्ण उल्लियो में भरपूर होने के कारण यह ग्रन्थ पाठको को वही आनन्द प्रदान करता है, जो प्रायण के महीने में अरुण्य पधँटको की । रसपेसल वर्णन का अधिक कवि हृदय-पाही व्यवसरो को हाथ में जाने नहीं देता, प्रत्युत यह उसे अपने काव्यकौशल से एक विरलतन सुन्दर वस्तु बना देता है ।

औचित्य —

शृङ्गारप्रधान इस प्रदम्ब के माध्यम से क्षेत्रेन्द्र ने तत्कालीन समाज में प्रभुत्व बेश्याओं के भीषण शोषण दुर्दमनीय धूर्तता, प्रबल बल्लभता का मग्न-चित्र प्रस्तुत कर जनता का अप्रतिम उपकार किया था। उनको बेश्याओं की एक एक गति-विधि का सूक्ष्म ज्ञान था। उनका प्रधान उद्देश्य था बेश्याओं की कुत्सागूरा से सामान्य अनुभवविहीन लोगों को राखेन करना। इसमें मग्न नहीं कि क्षेत्रेन्द्र को पर्याप्त सफलता भी मिली है। किन्तु वैसा करने में कहीं-कहीं उन्हें ऐसी बातों का भी वर्णन करना पड़ा है जो व्यवहार के दृष्टिबद्ध विपरीत प्रतीत होती हैं। पूर्णप्रौढ़ा कामिनी 'कलावती' के साथ अत्यन्त मुग्ध, जान में बाली, कष्टाभरण के मध्य रत्ना-मृज, चूल्का में माता के हाथ का सर्प, पैर में कटक (कड़ा) धारण करने वाले शिशु की रतिक्रीड़ा का वर्णन कथमपि औचित्यपूर्ण नहीं कहा जा सकता। 'जो बालक शय्या पर स्वयं चढ़न में असमर्थ होने के कारण बेटी के द्वारा चढ़ाया जाता है', जो 'बालक रोता है' ऐसा विचार कर स्वयं कलावती के द्वारा जोष्ट एवं गाल पर काटा नहीं जाता' वही 'कलावती' के अधरविषय को किस रस के कारण स्रष्टित करेगा? किस आनन्द के कारण उसकी तनुबल्लरी को नल में लान विस्तृत कर देगा? किस सामर्थ्य और पटुता के कारण रात्रि भर अनुसरण चटखनी की भाँति सम्मोहित कर मतवाली कलावती को खेदवशान्त करेगा? ये बातें व्यवहार तथा अनुभव के सर्वथा विपरीत हैं। 'औचित्यविचारवर्चा' में 'रसीचित्य' एवं 'अवम्प्योचित्य' के प्रतिपादक कवि का उक्त वर्णन किंचि भीति औचित्य की पदवी पर आम्बु हो सकता है? यदि बेश्याओं की समाज-विष्वसक प्रवृत्ति तथा श्रियाओं की प्रदर्शित करना अनिवार्य था तो यह दूसरे प्रकार से भी हो सकता था। उक्त प्रसंग को पढ़ते समय मन में एक विचक्षण उद्बेजक भाव उत्पन्न होता है। इस एक प्रसङ्ग

१ आरोग्यिनः स केत्या लट्वा मस्युप्रता शनैः शिशुः । ८४४ ।

२ रोदिति शिशुरिति दयया यस्य न दशनक्षत मया दत्तम् । ८४५ ।

३ खेदकान्तामकरोदपनातीतै समारोहै । ८४७ ।

को छोड़कर शेष वर्गों में आकर्षक एवं मनोहारी हैं। अतिकृपा घनाद्रप शब्दों की कृपणता को व्यक्त करने के लिये उसके वेग एवं व्यवहार का वर्णन पूर्ण उच्चिन् एवं अभिप्रायामित्यक्त है। किसी कृपण का इतना सटीक और सूक्ष्म वर्णन विरल ही मिलना है।

हास्य —

शेमेन्द्र हास्य-कथा क तो अधीनवर हैं। आलोचक इनके वपन और चरित्र चित्रण पर मुग्ध हो जाता है। हास्यकथा के लेखक के रूप में ये अग्रिम हैं। शेमेन्द्र की सिद्ध लेखनी पाठकों पर चोट करना जानती है। हास्य का आघात बड़ा सया हुआ होता है परन्तु इनकी सुझरता में होता है कि समाज का नाम बिना हमारे सामने धुँड कर सटा हो जाता है। यह हास्य विम्वरक न होकर समाज के पुनर्निर्माण की भावना में अनुप्राणित होता है। इनका प्रधान गुण व्यंग्य एवं आलोचना करना है। इनका 'दर्पदलन' संस्कृत के हास्य-साहित्य की एक विशिष्ट रचना है। 'समयमातृका' में भी शेमेन्द्र ने बीच-बीच में हास्य का पट भर दिया है। कुछ व्यक्तियों और बेटों की हँसी उन्होंने बड़ी ही उपयुक्त भाषा में की है। समाज में फैले नीम-हकीम एवं आनुर व्यक्तियों से भी मील-वाला करके घन लेने वाले वैद्य उनकी लेखनी की तीक्ष्णता से बचे न थे, देखिये —

सा मक्षे करमप्रेया मातुर्माता स्थिरस्थिति ।

व्याली गृहनिधानस्य हठा वैद्याधमेन मे ॥

योऽसावनयविद्यानिर्देश्य सद्य क्षयोद्यतः ।

वर्षादातुरनित्येन वृद्धोऽपि तरुणायते ॥ १।२७-२८

ततस्तद्वपचारेण शिशौ जातज्वरे व्यधात् ।

वैश्वदत्तोपयासा सा मत्स्यसुपपरिहयम् ॥

१ तैत्तिरीयब्राह्मणसंहितायां ब्रह्मविद्यायां श्रीगुरुभिरुक्तम् ।

गीर्णग्रावाण्डम्वधनकञ्जुकाञ्जालो ॥ ८१५५

निष्कण्डिदमपरिव्यययाज्ञात्तकन्यकप्रहारोप ।

रज्जुष्वपि त्वं सन्तमानोऽसौ रावनिर्दयप्रभृतिः ॥ ८५१७

पानीयं विनिवारणीयमहितं भक्तस्य चार्तेव का
 द्वित्राण्येव दिनानि घात्रिदयया घात्रोरमः पीयताम् ॥
 जीवत्वेप शिशुर्मजस्व विविधैरस्योत्सवैः संपदं
 वंदेनेति निवेद्यमानमकरोत् सा सर्वमेवाश्रितम् ॥

२।७१-७२

किन्तु उपहाससन्नाद् लेनेन्द्र कभी-कभी ऐसे भी उपहास को करते हैं, जो सर्वथा मर्यादा के विपरीत एवं उद्देजक होता है। 'कङ्काली' अपने गतदिनों का वर्णन करती हुई कथावती से कहती है कि—“एक बार मैंने ‘शङ्करदाहन’ नामक एक कामुक की प्रसन्नता के लिये बनावटी रूप में कहा—“आपके आश्रित से मेरी गरीरपीडा न जाने कहां चली गयी।” मेरे इस वर्णन को सुनकर वह यह कह कर रोता हुआ चला गया कि “मुझे अपने अङ्गों का यह चमत्कार नहीं ज्ञात था, अन्यथा शूल-शरीरपीडा-से मेरी माता मरने न पाती—

यिदितोऽयं प्रकारस्चेदभविष्यदमंशयः ।

तज्जनन्या वियोगो मे नाभविष्यद्विचेतसः ॥” ४।६४

इसी एक स्थल को छोड़ कर ‘समयमातृका’ में उल्लिखित हाम्य-वर्णन उपयुक्त एवं प्रभावकारी हुआ है।

परिस्मृतिः—

पञ्चम समय के रागवर्णन के अतिरिक्त अन्य सभी वर्णन अवसरोचित एवं मर्यादित हैं। प्रत्येक ‘समय’ को कथार्थे एक दूसरे की पूरक है। कथा का प्रारम्भ भी बड़े ही नाटकीय ढंग से होना है। प्रथम अङ्क में ‘कथावती’ एवं वेद्यागुद नामित ‘कङ्क’ का वर्णन एवं उनकी बातचीत भव्य बन पटी है। किन्तु कथा की परिस्मृति कुछ इतनी शीघ्रता एवं सामान्य ढंग में होती है कि आगे कुछ चमत्कार एवं नवीनता की उन्मुखता वाले पाठक की प्रायः निराशा ही हाथ लगती है। अवान्तर बातों के अतिविस्तार के कारण मूलकथा में ही संकोच करना पड़ा है। किन्तु फिर भी एक छोटी सी बात पर इतना बड़ा प्रदम्प

लिखना बन प्रशंसनीय नहीं है। सब कुछ एकसाथ मिला कर देखने पर "समयमातृका" एक रमणीय चित्ताकर्षक प्रबन्ध प्रतीत होता है।

१०. 'क्षेमेन्द्र' के द्वारा उल्लिखित कवि :—

'क्षेमेन्द्र' ने अपनी कृतियों में, विशेषकर 'कविविग्रहभरण', 'जौबिन्यविभार-वर्चा' एवं 'मृदुसतितनू' में, निम्नलिखित कवियों का नामोल्लेख एवं उद्धरण प्रस्तुत किया है :—

व्यास, उत्पलराज, तुंजोर, कनक, कालिदास, भास, हर्ष, रत्नाकर, परिमल, बल्लट, गौडीनक, राजशेखर, इन्दुराज, वीरदेव, साहिल, भट्टनारायण, दीपक, मुक्ताकण, श्यामन्द, मधुभूति, लाटडिण्डीर, रिस्सा, पशोवर्मा, चक्र, बागुभट्ट, भनूमेषठ, अभिनन्द, माध, परित्राजक, गङ्गाक (क्षेमेन्द्र ने इन्हें अपने उपाध्याय के नाम से किया है), मारवि, भनूहरि, चन्द्रक, शिवस्वामी, इन्द्रभानु, मयूर, मुक्तिरत्न, दामोदरगुप्त, भट्टवाचस्पति, भट्टमल्लट, विद्यामन्द, मातृगुप्त, आन, मानवहृद, कार्पटिक, प्रवरसेन, राजपुत्र मुक्तापीठ, अमरक (अमरक भी), आनन्द-वर्धन, भट्टप्रभाकर, धर्मकोटि, भट्टलटन, कुमारदास, मालवकुवलय, बाराहमिहिर, गन्धिनक, भट्टवदमसिंह और राजपुत्र लक्ष्मणादित्य^१।

'क्षेमेन्द्र' ने इन कवियों में से सर्वाधिक सम्मान व्यास के प्रति तदनु कालिदास एवं राजशेखर के प्रति अभिव्यक्त किया है।

'क्षेमेन्द्र' संस्कृत-साहित्य के सर्वश्रेष्ठ प्रकाशमान नित्य नवीन हीरक है। न केवल संस्कृत-विद्वन्मण्डली ही 'क्षेमेन्द्र' की कृतियों से उपहृत है अपितु सम्पूर्ण मानवसमाज उनका किरणही होकर अढाबनत है।

विजया दामो
संवत् २०२४
गुन्दावन

विजयामनुषट
रमाशङ्कर त्रिपाठी

१. 'वदमसिंह' और 'लक्ष्मणादित्य' क्षेमेन्द्र के शिष्य थे।



संमयसातृका

‘प्रकाश’ हिन्दीन्याख्योपेता

प्रथमः समयः

अनङ्गवातलाख्येण जिता येन जगत्रयी ।

विचित्रशक्तये तस्मै नमः कुमुदघनने ॥ १ ॥

अशरीरी बापुरुष अन्ध से विजयनी के विजेता, अद्भुत शक्ति बाले कामदेव को गमस्कार है ॥ १ ॥

टिप्पणी—होई भी इसी अथवा अनिरयी अपने विनेतव्य को धरा में करने के लिये कठिन कोशिश एवं ब्रह्मगारमय अन्ध का प्रयोग करता है । फिर भी वह अपने प्रविष्ट को बग में कर ही लेगा, यह भी निश्चित नहीं रहता । किन्तु कामदेव की अवस्था इसके ठीक विपरीत है । उसका सादक अथवा अन्ध मूर्खमान नहीं है और उसका घनुर भा सुष का है । ऐसी भी अवस्था में वह छोट से सन्तुष्ट की नहीं अपितु विजयनी को अपने बग में कर लेता है, यही उसकी विचित्र शक्तिमाना है ।

यस्या दुर्धमघोरप्रवृद्धरे विधक्षये लक्ष्यते

सुध्यान्धाविन लोलपालशफरी कुत्रापि लोकरयी ।

ताम्रजात्रिशास्त्रकलकलन्ता तैस्तैः सुरार्णवसि

प्राटां देहिममूहमोहनमयी काली कराला नमः ॥ २ ॥

सम्पूर्ण विश्व की परिसमाप्ति पर अर्थात् महाप्रलय की अवस्था में यह सम्पूर्ण त्रिलोकी जिसके दुर्घर्षण भयंकर मुत्तगद्वार में, क्षुब्ध सागर में चपल मत्स्य शिशु की भाँति, कहीं पर अर्थात् एक कणाश में दिखाई पड़ती है, ऐसी महाभयंकर महाकाली को नमस्कार है। यह महाकाली परिभाषा एवं परिधिस्थ महाकाल ने भी अपने वश में करने वाली है। विभिन्न पुराण इसी महाकाली, महाशक्ति, की स्तुति करते हैं और यही विभिन्न आत्मा को मोहित करनेवाली भी है अर्थात् यह काली ही आत्मा की स्वाभाविक प्रकृति पर अज्ञान का आवरण डालकर उसमें वैभिन्न्य एव सुख दुःखादि की भावना उत्पन्न कर देती है, जिससे वह अपने सत्यस्वरूप का भी नहीं पहचान पाता ॥ २ ॥

क्षेमेन्द्रेण रहस्यार्थमन्त्रतन्त्रोपयोगिनी ।

क्रियते चाररामाणामियं समयमातृका ॥ ३ ॥

महाकवि 'क्षेमेन्द्र' के द्वारा वेद्या सुन्दरियों के प्रच्छन्न प्रयोजन को सिद्ध करनेवाले उपायों से सजलित यह 'समयमातृका' लिखी जा रही है ॥ ३ ॥

अस्ति स्वस्तिमतां गिलासप्ततिः संभोगभङ्गीभुजः

केलिप्राङ्गणमङ्गनाकुलगुरोर्देवस्य शृङ्गारिणः ।

कश्मीरेषु पुरं परं प्रवरतालब्धाभिधाविधुतं

सौभाग्याभरणं महीप्रतनोः मङ्केनस्य त्रियः ॥ ४ ॥

कश्मीर प्रदेश में अपने नाम को अन्वर्थक करने वाला अर्थात् अपने नाम के अनुरूप ही विख्यात परमश्रेष्ठ 'प्रवरपुर' नामक एक नगर है। यह नगर श्रीमानों के विहार का स्थल, पृथिवी की नभोगभङ्गी, सुन्दरी-समूह के कुलगुरु कामदेव का क्रीडाप्राङ्गण, पृथिवी का सौभाग्यसूचक आभरण और लक्ष्मी अथवा शोभा का संकेतस्थल है ॥ ४ ॥

टिप्पणी—त्रिम प्रकार एक अभिमारिका को अपने प्रेमी से मिलने के लिये संकेतस्थल में जाने में तथा अधिक समयनक प्रेमी के माथ वहाँ रहने में आनन्द आता है उसी प्रकार लक्ष्मी अथवा शोभा भी वहाँ रहने में आनन्द का अनुभव करती है ।

यत्र त्रिनेत्रनेत्राग्निस्तत्स्यक्त्वा जगत्रयीम् ।

पौरस्त्रीत्रिवलीकूले वसत्यमममायकः ॥ ५ ॥

जहाँ पर त्रिनेत्र अर्थात् भगवान् शङ्कर की नेत्राग्नि से भयभीत होकर, अन त्रिलोकी को छोड़कर, कामदेव पुरवासिनी सुन्दरियों की त्रिवली (उदर के मध्य की तीन रेखाओं) के तट पर निवास करता है ॥ ५ ॥

टिप्पणी—त्रिवली के तट भाग पर कामदेव के निवास को बतलाने से शारीरिक त्रिवली की प्रगटता सूचित का मर्म है ।

तत्राभूदभिभूतेन्दुद्युतिः कंदर्पदर्पभूः ।

कान्ता कलायतीनाम वेश्या वश्याञ्जनं दृशोः ॥ ६ ॥

उसी नगर में चन्द्रमा की कान्ति को भी निरस्त कर देनेवाली, कामदेव के दर्प की प्रसवित्री, अपने नेत्रों में लगे अञ्जन की सुन्दरता से लोगों को अपने वश में करनेवाली 'कलायती' नाम की अति सुन्दरी वेश्या रहती थी ॥ ६ ॥

कुचयोः कठिनत्वेन कुटिलत्वेन वा भ्रुवोः ।

नेत्रयोः श्यामलत्वेन वेश्यावृत्तमदर्शयत् ॥ ७ ॥

कलायती अपने स्तनों की कठोरता, भ्रुवुटि की कुटिलता, तथा नेत्रों की श्यामलता से ही अपने वेश्याव्यापार को प्रदर्शित करती थी अर्थात् उमरे शरीर-भस्वार से ही यह प्रतीति होती थी कि यह सुन्दरी वेश्या व्यापार करने वाली है ॥ ७ ॥

मा हर्म्यशिरसाम् कदाचिद्गणिकागुरुम् ।

कामिनां नर्ममुद्दं ददर्श पथि नापितम् ॥ ८ ॥

एक समय जब कि वह अपने आसाद के पृष्ठ (छत) पर स्थित थी, वेश्याओं के शुरु, कामिनों का हँसी मनाक से मनोरंजन करने वाले नापित की मार्ग में जाते हुये देखा ॥ ८ ॥

श्मश्रुराशीचितमुखं काचकाचरलोचनम् ।

पीररं तीरमण्डकैर्मार्जारमित्र शारदम् ॥ ९ ॥

उसका मुख श्मश्रुओं से परिध्यात था, उसकी आँखें काँच की तरह चमकीली थी, शरदकाल में जलाशय के तट के मण्डकों को खाकर मोटे मार्जार की भाँति वह स्थूलकाय था ॥ ९ ॥

पिटानां केलिपटहं तप्तताम्रचटोपमम् ।

दधानं रोममालान्तं स्थूलखल्वाटकर्परम् ॥ १० ॥

कवि यहाँ उस नापित के शिर (कर्पर) का वर्णन करते हुये कहता है कि उनका पिस्तीर्ण एव खन्वाट (चेंदुला) शिर कामुक जनों के लिये केलिपटह (खिलवाट अथवा हँसी मनाक के समय बनाया जाने वाला नगाडा) था। उसकी आकृति आग में तपे हुये ताम्र के घट के समान थी। एकमात्र उससे मित्रारे किनारे रोम की पक्ति अवशिष्ट रह गई थी ॥ १० ॥

ताम्रूलष्टीयनत्रामाट्रपरि श्लिप्तचक्षुषम् ।

आनिनाय तमाहूय मा नेत्राञ्चलमंजया ॥ ११ ॥

‘हर्म्य के ऊपर से कोई मुझपर पान न धूँ दे’ इस भय से ऊपर की ओर देखते पान उस नापित को कनायत्री नामक वेश्या ने नेत्र के इक्षित से ऊपर अपने पास धुलाया ॥ ११ ॥

स समम्येत्य तां दृष्ट्वा चिन्तानिश्चललोचनाम् ।

पप्रच्छ मिस्मितः कृन्वा नर्मप्रणयमंवृतिम् ॥ १२ ॥

ऊपर पहुँचकर उस नापित ने चिन्ता के कारण निश्चल नेत्र वाली कलावती को देख कर अपने हास परिहास एव प्रेमालाप को द्विपाते

हुए (अर्थान् उन्मनस्क कलायनी के साथ हँसी मनाक का अस्तर न ममभ्रकर एतत्कार्योन्मुख अपने आकार एव भावों को छिपाते हुए) आश्चर्यपूर्ण उससे पूछा ॥ १२ ॥

ध्यानालम्बनमाननं करनले व्यालम्बमानालम्बं

लुप्तव्यञ्जनमञ्जनं नयनयोनिःश्वासतान्तोऽधरः ।

मानह्रीरनिलीनकेलिविहगं निद्रायमाणं गृहे (?)

प्रेमः प्रोषितयोषितां ममुचितः रुस्मादरुस्मात्तत्र ॥ १३ ॥

किसी बात की चिन्ता में तल्लीन, ऊपर लटकनेवाला केशों से व्याप्त अपने मुख को तुमने करनल (हथेली) पर क्यों रक्खा है ? तुम्हारे नेत्रों का अचन क्यों मिट गया है ? उष्ण निद्रास से तुम्हारा अधर क्यों मलिन अथवा कृश हो गया है ? केलिविहग (केलिरूपी विहग अथवा केलि के लिये पालित पक्षी । यहाँ पर प्रथम अर्थ ही प्रसंगान्त प्रधान अर्थ है ।) भी गृह (देहरूपी घर अथवा घर) में क्यों निद्रावृत्ति, निष्क्रिय शान्त अतः निद्रापरवश दिखलाई पड़ रहा है ? क्यों अकस्मात् तुमने प्रोषितभर्तृका स्त्रियों (जिन स्त्रियों के पति परदेश गये हों) की भाँति अपना उप बना लिया है ? ॥ १३ ॥

निष्पत्ती—हथेली पर मुख रखने से चिन्ता की वर्तमानता, नेत्राचन के मिटने से अत्यधिक रुदन, अधर की मलिनता से हृदय के मत्ताप, केलिविहग की निवृत्त्यता से परिस्थिति की गम्भीरता एवं प्रोषितभर्तृकाओं के समान वेप से उद्विगता एवं व्यापारप्रतिपात की सूचना मिलती है ।

किं मेराला मदनान्दिग्धूर्णितम्पे

सुश्रोणि नैव नत गायति मङ्गलानि ।

अङ्गं कृशाङ्गि किमनङ्गयशःप्रभेण

रूपैरचन्दनरसेन न लिप्तमेतत् ॥ १४ ॥

हे सुन्दर फटितट वाली कामिनी ! रोद की बात है कि तुम्हारे नितम्ब

पर कामदेव की बन्दिग्रधू अर्थात् रामदेव के यश को गानेवाली बन्दिनी स्त्री रूप मेरुला (करघनी) क्यों नहीं मङ्गल का गान कर रही है ? हे कृशाब्धी ! रामदेव ने यश की तरह कान्ति वाले अर्थात् धवल कर्पूर-मिश्रित चन्दन के रस से तुम्हारे अङ्ग क्यों नहीं लिप्त हैं अर्थात् तुम्हारे अङ्गप्रमाणन के न करने का कारण क्या है ? ॥ १४ ॥

प्राप्तं पुरः प्रचुरलामममंस्पृशन्ती

भाविप्रभूतविभवाय कृताभियोगा ।

किं केनचिन्सुचिरमेवननिष्फलेन

मिथ्योपचारवचनेन न वञ्चितामि ॥ १५ ॥

भविष्य मे प्राप्त हान वाली प्रभूत सम्पत्ति के लिये प्रयत्नशील अतः सम्मुख प्राप्त प्रचुर लाम को भी न छूती हुई अर्थात् सामने आग हुए पर्याप्त धन को भी ठुकराती हुई तुम बहुत दिन तक सेवन करने के बाद भी निरुक्त सिद्ध होने वाले किसी के व्यर्थ चाटुकारितापूर्ण वचनों से क्या नहीं वञ्चित की गई हो ? अर्थात् अरुच्य ही तुम किसी चाटुकार के द्वारा ठग ली गई हो ॥ १५ ॥

लोभाद्गृहीतमविभाव्य भयं भवत्या

दर्पात्प्रदर्शितमशङ्कितया मयीभिः ।

दत्तं तवाप्रतिममाभरणं नृपाहं

चोरेण किं प्रलपितं नगराधिपात्रे ॥ १६ ॥

किसी प्रेमी के द्वारा प्रदत्त, राजाओं (धनियों) के सम्मने दे योग्य, अप्रतिम, आभूषणों के विषय में, निन्दे कि तुमने लोभ के कारण बिना किसी भय की चिन्ता किये लेकर उर्ध्वश निशस् होकर अपनी सखियों के समक्ष दिग्गलाया था, किसी चोर ने नगर के अधिपति के समक्ष कह दिया है क्या ? ॥ १६ ॥

टिप्पणी—सखियों के समक्ष आभूषणों के दिखाने में 'कलावती' नामक

वेदया का दर्प यह था कि 'देखो, मेरा सौन्दर्य इतना अग्रतिम है कि बड़े बड़े धनाढ्य व्यक्ति इतना बहुमूल्य वस्तुयें मुझे सनपत करते हैं। ऐसी वस्तुयें तुम लोगों के लिये सर्वथा दुर्लभ हैं।

दानोद्यतेन धनिकेन विशेषमङ्गा-

त्सक्तोऽयमिन्यथ शनैरवसायितेन ।

लब्धान्तरस्यजनमित्त्रविरोधितेन

किं त्वन्निकारदुषितेन कृतो विवाहः ॥ १७ ॥

तुम्हारे साथ विशेष ससर्ग के कारण "य इस वेश्या में विशेष आसक्त है" इस बात के शनैः शनैः निश्चिन हो जाने पर असरोपलब्धि (क्षिप्तोपलब्धि) के अनन्तर अपन मित्रों पर उनों से विरोधित और उसी समय संयोगवशान् तुम्हारे तिरस्कार से भी कुपित, तुमको धनदान करने में मर्षदा उत्पर रहनेवाले किसी तुम्हारे प्रेमी धनिक ने विवाह कर लिया है क्या ? ॥ १७ ॥

टिप्पणी—प्रम' धनिक के साथ उनके मित्रों आदि के विरोध का कारण (अरमर अपवा छिद्र) एक है। वेदया से उन सभी का प्रेम करना समझना चाहिये।

दत्त्या सकृत्तनुभिभूषणमंशुकं वा

यद्दानुगन्धगिरलीकृतकामुकेन ।

यक्षेण मर्जजनतामुसभूः प्रपेय

तीक्ष्णेन भीरु किमु केनचिदावृतासि ॥ १८ ॥

हैं भीरु ! एक बार स्वल्प आभूषण अथवा वस्त्र प्रदान करके पुनः प्रेमव्यापार को गिरल रहनेवाले अर्थान् प्रेम व्यापार को कम करने तुम्हें धन दान कम करने वाले किसी तीक्ष्ण (कर्कश एवं प्रचल) कामुक व्यक्ति के द्वारा, सम्पूर्ण जनता को सुख देने वाली यन्त्रावृत्त प्रथा की भाँति आवृत्त हो क्या ? ॥ १८ ॥

वित्तप्रदानविफलेन पलायमाना

कौटिल्यचारुचटुला शफरीव तोये ।

गूढं वशीकरणचूर्णमुचा कचेपु

किं केनचिन्न कुहकेन वशीकृतामि ॥ १९ ॥

अपनी श्रृजुना के कारण सुन्दर प्रतीत होने वाली चञ्चल, जल में इतस्ततः पलायमान मछली की भाँति भागनेवाली (प्रेम एवं काम व्यापार से विरत होने वाली) तुम क्या धन देने में असमर्थ अतः तुम्हारे कचों में गुप्त अभिप्राय से सर्वालित वशीकरणचूर्ण (वशीकरण मन्त्र से सिद्ध ऐसा चूर्ण जिसके शिर पर रखने मात्र से व्यक्ति प्रयोज्य के वश में हो जाता है) को छोड़ने वाले किसी कामुक के द्वारा वश में नहीं की गई हो ? अर्थात् अश्वय ही ऐसे व्यक्ति के द्वारा वश में की गई हो ॥ १६ ॥

निष्कासितुं हृदयसंचिततीव्रवैरे

संदर्शितप्रकटकृदधनोपचारे

।

लोभाच्चयानपचयैः पुनरावृत्तेः (१)

प्राप्तः किमु प्रमथमर्थमशादनर्थः ॥ २० ॥

किसी के प्रकटरूप से निष्फल धनोपचार (धन का प्रदान) के दिखलाने पर अर्थात् तुम्हें धन प्रदान करने में असफल रहने पर अथवा प्रकट रूप से कपटपूर्वक धनोपचार (धन देने का लालच आदि) के दिखलाने पर इन व्यक्ति को अपने घर एवं सम्पर्क से निकालने के लिये उससे प्रति अपने हृदय में तीव्र वैर संचित करने वाली है वैसे ! लोभ का संचरण न कर सकने के कारण अर्थात् धन-प्राप्ति की आशा से निर्धन अथवा स्वल्पधन व्यक्तियों से घिरी हुई सी होकर क्या तुम्हारे द्वारा दृढशक्त पुनः अनर्थ प्राप्त किया गया है ? ॥ २० ॥

कैर्नित्यसंभवनिजं वणिजं त्यजन्त्या

यान्त्या तृणज्वलनदीप्तिनियोगलक्ष्मीम् ।

नष्टे सुवस्त्रविभवे विरते पुराणे

जातस्तत्र स्तवकितोभयलाभमङ्गः (?) ॥ २१ ॥

किन्ती कारणों से, सर्वदा वर्धनशील वणिक् का त्याग करनेवाली और अन्य लोगों के प्रति, जिनमें कि प्राचीन प्रेमी जन भी थे, तृणाग्नि के समान दाहकता की शोभा को धारण करने वाली अर्थात् तृण की भाँति क्षण भर के लिये प्रज्वलित (क्रुद्ध) होकर उन्हें भी विरत कर देने वाली तुम्हारे द्वारा, सुन्दर वस्त्र समूह के नष्ट हो जाने पर और प्राचीन वस्त्र के विरत अर्थात् परिव्यक्त हो जाने पर जिस प्रकार व्यक्ति दोनों लाभ से वञ्चित रह जाता है इसी प्रकार तुम्हारे ही स्तवकित अर्थात् पुष्पगुच्छ की भाँति विकृतित एवं प्राप्त उभयविध लाभ का विनाश किया गया है क्या ? ॥ २१ ॥

सिद्धः प्रयत्नविभवः परितोषितस्त्वं

दातुं समुद्यतमतिः स्वयमर्थशास्त्रम् ।

नीतस्तत्र प्रचुरमत्सरयान्यया किं

गैहान्निधिर्वहुधनः स्वसखीमुखेन ॥ २२ ॥

तुम्हारे द्वारा प्रवृत्त धन एवं वस्त्रादि के दान से मन्तुष्ट हुये व्यक्ति के विविध प्रयत्नों से तुम्हारी अनुकूलता को प्राप्त हुआ अर्थात् तुम्हारे प्रेम-पाश में आवद्ध हुआ अतः स्वयमेव विशाल वैभव को तुम्हें देने के लिये तत्पर विचार वाला अत्यधिक सम्पत्तिशाली व्यक्ति, तुम्हारे साथ अत्यधिक मत्सर करने वाली अन्य किसी स्त्री अथवा वेश्या के द्वारा अपनी मत्सरियों के माध्यम से तुम्हारे घर से अर्थात् तुम्हारे प्रेम-पाश में डूबा कर अपने पास बुला लिया गया है क्या ? ॥ २२ ॥

किं नापसादपदवीमतिग्राह्यं कष्टं
लब्धापिकारप्रिभवेन प्रिर्जितासि ।

किं मूर्च्छितामि विरतासि सुखोज्झितामि
ध्यानाप्रधानप्रधिरामि निमीलितामि ॥ २३ ॥

अत्यधिक कष्ट देने वाले दुःखपूर्ण मार्गों (उपायों) के अवलम्बन के अनन्तर प्राप्त हुये, अपण्ट वैभवशाली. किसी व्यक्ति के द्वारा तुम परित्यक्त कर दी गई हो क्या? अर्थात् निम्न धनी व्यक्ति को तुमने अपने प्रेम पाश में फँसान के लिये विविध कष्टपूर्ण उपायों का अनुष्ठान किया था क्या उसने तुम्हें छोड़ दिया है? क्या तुम मूर्च्छित हो गई हो? अथवा किसी कल्याणकारी कार्य से विरत हो गई हो? अथवा मुझ से विरत कर दी गई हो? अथवा किसी प्रियतम व्यक्ति अथवा वस्तु में ध्यान में अत्यधिक लीन हो जाने से थक हो गई हो? अथवा ज्ञान वृद्धकर निमीलित (व्यापार से विरत) हो गई हो? ॥ २३ ॥

टिप्पणी—यहाँ यह हास्य है कि कस्यार्थे धनियों को आहूत कर अपने प्रेम पाश में आबद्ध करने के लिये विविध उपायों एवं कष्ट व्यापारों का अवलम्बन करती हैं ।

अप्युद्दामव्यसनगरणेः संगमे कामुकानां
भद्रं भद्रे भुवनजविनस्तनत्कलाकौशलस्य ।

अप्युत्साहप्रचुरमुद्दः कामक्रेलीनियामाः

प्रीडोत्साहास्तत्र मुनदने स्वस्तिमन्नो विलासाः ॥ २४ ॥

हे भद्रे! कामुक व्यक्तियों के अत्यधिक प्रयत्न नमोरा रूप व्यसन की पद्धति (तरीका) के जगम के समय अर्थात् कामुक व्यक्ति के साथ सगम के समय प्रदर्शित, भुवन को भी वश में करने वाले तुम्हारे कला कौशल (हासभाव आदि) तो महत्त्वपूर्ण हैं न? हे सुनदने! उत्साह के प्रबल महाचक्र एवं उत्साह को पूर्ण प्रीति प्रदान

करने वाले काम क्रीडा के आश्रयभूत तुम्हारे विलास तो स्थितिमान हैं न ? ॥ २४ ॥

इत्यादि तेन हितसंनिहितेन पृष्टा

स्पृष्टा मृशं विभयमङ्गभयोद्धवेन ।

मा तं जगाद सुखदुःखमहापभूतं

चिन्ताविशेषविशया बहुशः श्वमन्ती ॥ २५ ॥

हितमाधन के लिये उपस्थित उस नापित के द्वारा इस प्रकार पूछी गई, सम्पत्ति विनाश के भय से अत्यधिक विह्वल, चिन्ताविशेष से विशा, 'कलायनी' नामक वेश्या ने लम्बे लम्बे उच्छ्वास भरते हुए सुख दुःख में मग्न उस नापित से कहना प्रारम्भ किया ॥ २५ ॥

मृदु कङ्क ममानन्तां चिन्ता संतापकारिणीम् ।

ययाहमवमीदामि ग्रीष्मग्नानेन मञ्जरी ॥ २६ ॥

दे कहूँ ! अत्यधिक सन्ताप को देने वाली मेरी निरवधिक चिन्ता को सुनो । इसी चिन्ता के कारण मैं, ग्रीष्म के मन्ताप से मलिन पुष्प-मञ्जरी की भाँति, अत्यधिक तिरछ हो रही हूँ ॥ २६ ॥

मा मखे करमग्रीवा मातुर्माता स्थिरस्थितिः ।

व्याली गृहनिधानस्य हता वैद्याधमेन मे ॥ २७ ॥

हे मित्र ! करम की भाँति गर्दनवाली, स्थिरस्थिति अर्थात् चलने-फिरने में अममर्थ, घर के खाने के समीप स्थित सपिणी की भाँति हमारे घर की रक्षाकर्त्री, मेरी माँ की माँ अर्थात् मेरी जानी उपचार करनेवाले वैद्याधम के द्वारा मार डाली गई ॥ २७ ॥

• योऽमात्रयविद्याविद्वयः मयः धयोद्यतः ।

दर्पादातुरचित्तेन वृद्धोऽपि तरुणायते ॥ २८ ॥

गर्णीय विद्या का वेत्ता, रुग्ण व्यक्ति के विनाश के लिये तत्काल दण्ड जो यह वैद्य है, वह वृद्ध होता हुआ भी वृष के कारण गृहीत

आतुर व्यक्तियों की सम्पत्ति के अनायास उपभोग से तरुण सा हो गया है अर्थात् मरणासन्न लोगों के वृद्धुम्ब से यथेन्द्र धन लेकर और उसका उपभोग कर खूब हृष्ट-पुष्टाङ्ग हो गया है ॥ २८ ॥

टिप्पणी—कलवती के कहने का भाव यह है कि उक्त वैशाख ने अनुपयुक्त चिन्तिता से मेरी नानी का वध कर टाला ।

तेन रोगघराख्येन दत्ता रसवती मम ।

त्रिभागशेषतां नीता लौल्यलोभोद्भवात्तया ॥ २९ ॥

उस रोगघर (यैद्य अथवा किसी अन्य व्यक्ति) ने मुझे रातसी भोजन लाकर दिया । मेरे खाने के पूर्व ही लोभ के वशीभूत होकर मेरी नानी ने उसका अधिकांश भाग (दो भाग) खा लिया । इस प्रकार राणा उस वृद्धा की हालत अधिक चिन्ताजनक हो गई ॥ २९ ॥

टिप्पणी—‘रसवता’ रसोई घर की कहते हैं । किन्तु प्रमत्तवश उसका अर्थ ‘उत्तम अथवा रातसी भोजन’ करना ही हो सकता होगा ।

प्रपञ्चपञ्चनापैरात्मा तेनातुरतां गता ।

काञ्चना पञ्चनां नीता पश्यन्ती काञ्चनं जगत् ॥ ३० ॥

इस कारण से अर्थात् अत्यधिक भोजन खा से लेने आतुरता (मरणासन्नता) को प्राप्त हुई अतः सम्पूर्ण जगत् को सुवर्णनिर्मित सा देखनी हुई (वृद्धा मरणामन्न व्यक्तियों की इसी प्रकार की अग्रम्यायें हुआ करती हैं) मेरी नानी काञ्चनी (दासीविशेष) के द्वारा प्रपञ्च पञ्चना रूपी घेर से मार टाली गई ॥ ३० ॥

टिप्पणी—काञ्चनी उस दृग्गता वृद्धा की सेवा में नियुक्त एक दासी थी । उसका कार्य दृग्गता की सेवा के अतिरिक्त उससे अनुचित वस्तुओं के खाने से रोकना भी था । किन्तु अमावधानी के कारण वह ऐसा न कर सकी और वृद्धा ने भोजन, जो उसके लिये उपयुक्त था, खा लिया । बाद में पछने पर भय के कारण काञ्चनी ने ‘कलवती’ को ठगने के लिये बात बनाकर बुलाने दे दिया था । यही उसका ‘प्रपञ्च’ एवं वचना घेर था ।

हिरण्यवर्णां वसुधां तस्मिन्नन्तश्चणेऽपि सा ।

दृष्ट्वा मामब्रवीद्वत्से गृह्यतां गृह्यतामिति ॥ ३१ ॥

उमने (मेरी नानी ने) उस अन्तश्चण में भी अर्थात् गृह्यु की बेला में भी पृथिवी को सुवर्णवर्णा देखाकर मुझसे कहा—“वत्से ! इसे ग्रहण करो, ग्रहण करो” ॥ ३१ ॥

टिप्पणी—सुमूर्ध को मरने के समय में वे हो सब हरय दिखलायी पड़ते हैं जिनका अभ्यास उसे अपने जीवन में रहता है ।

ततस्तस्यामतीतायां गृहं मे शून्यतां गतम् ।

पराभवास्पदीभूतं कामुकैः स्वेच्छया घृतम् ॥ ३२ ॥

उसके बाद, उस गृह्य के इस ससार से रिदा हो जाने पर शून्यता को प्राप्त हुआ अर्थात् रक्षत्रिहीन मेरा घर तिरस्कारस्पद हो गया है । कामुक पुरुषों के द्वारा यह सर्वदा घिरा रहता है ॥ ३२ ॥

टिप्पणी—प्रायः व्यवहार में यह देखा जाता है कि बीड़ भी तरुणी घेरया अपनी दिगी गम्बन्धी छी, जो कि बुद्धा होती है, से सर्वदा रक्षित रहती है । यह बुद्धा ही तरुणी घेरया में लोगों के मिलने-जुलने का कार्यक्रम आदि बनाती है । किसी रक्षिका के बिना सुन्दरी तरुणी घेरया का घर समाज के अवा-
कणीय तत्त्वों से सर्वदा उपद्रवग्रस्त बना रहता है ।

रिक्तः शक्तो न निर्याति नामोत्पन्नमरं घनी ।

शून्यशालेन पथिकैर्निरुद्धा कामुकैरहम् ॥ ३३ ॥

ममर्थ अर्थात् शरीर से बलशाली निर्धन व्यक्ति मेरे घर से निकालने पर भी नहीं निकलता है, इस प्रकार द्रव्य देने में ममर्थ जो घनी व्यक्ति है, वे मेरे पास आने का अग्रसर ही नहीं पाते । जिस प्रकार पथिकों के द्वारा मार्ग की घर्मशाला स्वेच्छया परिख्याम रहती है, उसी प्रकार मैं भी कामुक व्यक्तियों से सर्वदा निरुद्ध रहती हूँ ॥ ३३ ॥

तस्माद्विदेशं गच्छामि नेच्छाम्युच्छृङ्खलां स्थितिम् ।

कथं रक्तविरक्तानां तुल्यां स्वायत्ततां सहे ॥ ३४ ॥

अतः मैं विदेश जाना चाहती हूँ। यहाँ के उच्छ्वसल यातायात में रहना मुझे कथमपि पसन्द नहीं है। भला बतलाइये कि मैं रक्त (अपने प्रति वस्तुतः अनुराग रखने वाला) एवं विरक्त (अनुरागविहीन एकमात्र संभोगेच्छु) दोनों के समान अधिकार [स्यायत्ता] की किस प्रकार सहन कर सकती हूँ ? ॥ ३४ ॥

इत्युद्वाप्यदशस्तस्याः प्रलापं वृद्धनापितः ।

आकर्ण्य तां समायास्य मोन्द्धासं प्रत्यभाषत ॥ ३५ ॥

अश्रुपूर्ण नेत्रों वाली उस वेश्या के इस प्रकार के प्रलाप को सुनकर उस वृद्ध नापित ने उसे सन्तोष [ढाढस] देकर सन्वाप के साथ कहना प्रारम्भ किया ॥ ३५ ॥

भवत्या वित्तलोभेन निर्निचारतया परम् ।

मिषदुष्टभुजंगोऽर्मा मयमेव प्रवेशितः ॥ ३६ ॥

बिना परिणाम के विचार के ही, एकमात्र धन की लोलुपता के कारण आपने स्वयं ही दुष्ट एवं कामुक अथवा दुष्ट एवं भुजंग की तरह वृद्धि इस वैद्य को अपने घर में प्रविष्ट कराया है ॥ ३६ ॥

जनन्यो हि हतास्तेन वेश्यानां पव्ययुक्तिभिः ।

किं वृद्धनीकृतान्तोऽर्मा रैद्यो न निदितस्त्वत् ॥ ३७ ॥

इस दुष्ट वैद्य ने पद्य की युक्तियों से वेश्याओं की अनेक मानाओं (ये मानाये ही उन वेश्याओं की रक्षिका थीं) को मार डाला है। क्या वृद्धिनियों के यमराज इस इन वैद्य के स्वभाव को अभी तक तुमने यथार्थरूप से नहीं जाना था ? ॥ ३७ ॥

म रोगिमृगयर्गाणां मृगयानिर्गतः पथि ।

इत्यादिभिः स्तुतिपदैर्विचर्तैः प्रणम्यते ॥ ३८ ॥

‘यमाय धर्मराजाय मृत्यवे चान्तकाय च ।

वैयस्वताय कालाय सर्वप्राणहराय च ॥ ३९ ॥’

जब वह वैशाखम रोगिरूप मृगसमूह की मृगया (शिकार) के लिये अपने घर से निकलता है, तब मार्ग में विटों एवं चेटों (व्यभिचारियों) के द्वारा “यम, धर्मराज, मृत्यु, अन्तर, वैयस्वत, काल एवं मयके प्राणों का हरण करने वाले । आपको नमस्कार है” इत्यादि स्तुति वाक्यों से प्रणाम किया जाता है ॥ ३८-३९ ॥

टिप्पणी—यहाँ विटों एवं चेटों के उक्त कथन में वैय की असफलता एवं प्राणघातिनी चिकित्सा-पद्धति को सूचित किया गया है । यही कारण है कि उने यमराज के बहुत से नामों के द्वारा संबोधित किया गया है ।

अधुना दुःखमुत्सृज्य मनःस्थिर्यं विधीयताम् ।

कृत्रिमः क्रियतां गेहे रक्षायै जननीजनः ॥ ४० ॥

इम समय दुःख का परित्याग कर अपने मन को स्थिर कीजिये और गृह की रक्षा के लिये कृत्रिम अर्थात् वेतन पर काम करने वाली किसी जननी (कुटिनी) को नियुक्ति कीजिये ॥ ४० ॥

व्याघ्रीन कुटिनी यत्र रक्तपानामिषैषिणी ।

नास्ते तत्र प्रगल्भन्ते जम्बुका इव कामुकाः ॥ ४१ ॥

निम गेया के घर में रक्तपान एवं मांस-भोजन की इच्छावाली व्याघ्री को भौंति कुटिनी नहीं रहती वहाँ जम्बुकों (लियारों) की भौंति कामुकजन घृष्टता करते ही हैं ॥ ४१ ॥

यत्र तत्र निमग्नानां वेश्यानां जननीं विना ।

मध्ययोर्दिवसस्यापि मृदूर्तार्यस्य न क्षणः ॥ ४२ ॥

जननी (कुटिनी) के विना रहने वाली अतः जहाँ-तहाँ (पात्र-पात्र का बिना विचार विधे जिस किसी जन में) प्रेम व्यरहार करने वाली वेश्याओं का, दिन की दोनों मध्यओं की भौंति अर्द्धमूर्त का

भी क्षण (दिन के पक्ष में समय एवं वेश्या के पक्ष में विग्राम) नहीं होता ॥ ४२ ॥

टिप्पणी—यहाँ यह शतन्य ^२ कि दोनों में से किसी ना संध्या का अर्द्ध रात्रि भी दिन के साथ नहीं परिगणित किया जाता ।

न भवत्येव धूर्तस्य वेश्यावेश्मन्यमातृके ।

चुल्लीमुपम्य हेमन्ते मार्जारस्येव निर्गमः ॥ ४३ ॥

मातृविहीन (कुट्टिनीरहित) वेश्या के घर से धूर्त (निर्वन कामुक) जमी प्रकार से जन्म नहीं निकलते जिस प्रकार हेमन्त ऋतु में क्षिप्रिदुष्ण चुल्ली (भोजन पकाने के लिये सृष्टिकानिमित्त चूल्हा) में मोया हुआ मार्जार (बिलाल) भगाने पर भी शीघ्र नहीं निकलता ॥ ४३ ॥

प्रविष्टा कुट्टिनीहीनगृहं क्षीणपटा विद्राः ।

गाथाः पठन्ति गायन्ति व्ययद्रविणमर्थिताः ॥ ४४ ॥

कुट्टिनीविहीन वेश्या के घर में प्रविष्ट हुये क्षीणवस्त्रधारी (नटीन-वस्त्रधारी अथवा जीर्णवस्त्रधारी) विद्रा (कामुक) जब उनके द्वारा निर्धारित धन (यह धन संगीत अथवा सभोग के पारिश्रमिक के रूप में निर्धारित किया जाता है) को देने के लिये बड़े जाते हैं तब वे गाथा (बगाने के लिये गड़ी गई कानियाँ) रटने लगने हैं । धन-विहीन कामुक बाग्याल से ही अपना काम निरालना चाहते हैं ॥ ४४ ॥

अकण्टका पुष्पमही वेश्यशोषिदमातृका ।

मन्त्रिहीना च राज्यश्रीर्भुज्यते विटचेटर्कः ॥ ४५ ॥

अकण्टकविहीन पुष्पवाटिका, गता (रक्षिणी, कुट्टिनी) विहीन वस्त्रधारी वेश्या एवं वनमन्त्रियों से हीन राज्यलक्ष्मी विटों एवं चेटों के द्वारा भोगी जाती है ॥ ४५ ॥

अयं पीनमननाभोगर्भाभाग्रिमनोचितः ।

द्रविणोपार्जनस्यैव कालः कुवलयक्षणे ॥ ४६ ॥

हे कमलनेत्रे ! स्थूल (मोटे एवं निविड) स्तनों की सौभाग्यश्री के योग्य घनोपाजन का तुम्हारा यही समय है ॥ ४६ ॥

रत्ना इनातिचपलाः कृतालिङ्गनसंगमाः ।

न गताः पुनरायान्ति ताले यौवनरासराः ॥ ४७ ॥

हे सुगंधे ! सुन्दर आलिङ्गन की अनुमति कर चुकने वाले, अत्यधिक चपल, रत्नों की मूर्ति यौवन के दिन चले जाने पर पुन लौट कर नहीं आया करते ॥ ४७ ॥

प्रथम

नां पुष्पशतीनां लतानां च ॥ ४८ ॥

पुष्पशती (रजस्रला एवं प्रसूतशती) की एवं लता (यौवन के प्रारम्भ में सुरप्रदायक एवं रक्ष्य हुआ करती है) ॥ ४८ ॥

तस्मान्मानिनि कापि हेमकुसुमारामोचयाय त्वया

माता तानदनेककृटकुटिला काचित्पमन्निष्यताम् ।

एताः सुभ्रु भवन्ति यौवनमरारम्भे त्रिजुम्भामुग्रौ

वैश्यानां हि नियोगिनामिदं शरत्काले घनाः संपदः ॥ ४९ ॥

इसलिये हे मानिनि ! अत्यधिक घन की अभिवृद्धि के लिये अनेक प्रपञ्च एवं पट्यन्त्र में प्रवीण (प्रपञ्च एवं पट्यन्त्र में प्रवीण होना ही चसकी बुद्धिलवा है) किसी माता (रक्षाकर्त्री) का अन्वेषण तुम्हें करना चाहिए । हे सुन्दरभ्रुकुटियाली स्त्री ! जिस प्रकार शरत्काल में वृषकों को प्रधुर सम्पत्ति का लाभ होता है, वन्मो प्रकार पूर्ण यौवनावस्था के समय में वैश्याओं के लिये ये मातायें पर्याप्त सम्पत्ति का कारण होती हैं ॥ ४९ ॥

अस्त्येव मा नहुतराङ्गशती तुलेन

कालस्य मर्जजनपण्यपसिग्रहेषु ।

तिप्रप्रकृष्टपलम्पनया ययामौ

भार्गी कृतः परिमितत्तमुपैति मेरुः ॥ ५० ॥

जिसे तुम माता बनाओगी वह, सम्पूर्ण प्राणिरूप पण्य (खरीदने की वस्तु) के ग्रहण करने में विस्तीर्ण मध्यभागवाली काल की उस तुला (तराजू) की भाँति होगी (होनी चाहिये), जिस तुला (पश्चान्तर में खो) के द्वारा अतिशीघ्र पलकल्पना से (एक एक पल के रूप में करने से अर्थात् ग्रहण करने से) भागीकृत (बाँटा या काटा गया) यह मेरु (पश्चात् मेरुसदृश धनो व्यक्ति) भी परिमितता को प्राप्त हो जाता है अर्थात् सामान्य बन जाता है ॥ ५० ॥

यासां रामामलयजलतागाढसंरोधलीला

निर्पन्त्राणां नियमजननी भोगिनां मन्त्रमुद्रा ।

मिथं यस्याः फलकलनया लक्ष्यतामेति पाणौ

तस्या जन्मक्रमपरिगतं श्रूयतां वृत्तमेतत् ॥ ५१ ॥

जिसके हाँथ में यह सम्पूर्ण विश्व परिणाम से ही लक्ष्यता को प्राप्त होता है अर्थात् परिणाम को देखकर ही यह जाना जाता है कि अमुक व्यक्ति इस वृद्धा की वृद्धागुरा में आ फँसा था, उसके जन्म आदि जीवन के वृत्तान्त को सुनो ॥ ५१ ॥

तद्वृत्तमात्रश्रवणेन कोऽपि संजायते बुद्धिविशेषलामः ।

तपोपदेशे स्वमेव दत्ते भवत्यसौ हस्तगता त्रिलोकी ॥ ५२ ॥

इति श्रीव्यासदामापराम्यक्षेमेन्द्रनिर्मिताया समयमातृकाया चिन्तापरिप्रभो नाम

प्रथमः समयः

उस वृद्धा के जीवन वृत्तान्त के श्रवणमात्र से एक विलक्षण प्रकार की बुद्धि उत्पन्न हो जाती है। और यदि वह स्वयं किसी को उपदेश दे देता, उपदिष्ट व्यक्ति के लिये यह समय त्रिलोकी ही हस्तगता हो जाती है ॥ ५२ ॥

‘इस प्रकार ‘श्री व्यासदाम’, जिनका दूसरा नाम ‘क्षेमेन्द्र’ था,

के द्वारा निर्मित ‘समयमातृका’ का ‘चिन्ता परिप्रभ’ नामक

प्रथम समय समाप्त हुआ ।



द्वितीयः समयः

अथ दत्तावधानायां कलावत्यां यथाविधि ।

कथामकथयत्कङ्कः कुट्टिन्याः कपटाश्रयाम् ॥ १ ॥

इसके अनन्तर 'कलावती' के उक्त कपट प्रवीणा वृद्धा के वृत्तान्त को श्रवण करने के लिये सावधान होने पर 'कङ्क' (नापित) ने कुट्टिनी की कपट एवं छत्तों से परिपूर्ण कथा को यथाश्रयान कहना प्रारम्भ किया ॥ १ ॥

सर्वमज्ञां नमस्कृत्य तामेव सरसैरवीम् ।

यदामि चरितं तस्याः कुशौ यस्या जगन्त्रयी ॥ २ ॥

जिसकी कुक्षि में सम्पूर्ण यह त्रिनोको वर्तमान है और जो सर्वमज्ञा (सब कुछ खाने वाली) है, उन शङ्कर की मैत्री शक्ति को नमस्कार करके मैं उस कुट्टिनी के चरित को कहता हूँ ॥ २ ॥

परिहासपुरे पूर्वं पान्थारमथपालिका ।

बभूव भूमिका नाम ॥ ३ ॥

पूर्व काल में 'परिहासपुर' में यात्रियों के निवास के लिये निर्मित धर्मशाला की रखवाली करने वाली 'भूमिका' नाम की एक स्त्री थी ॥३॥
.....कन्यका ।

जाता घरट्टमालायामर्घधट्टिकाभिषा ॥ ४ ॥

.....कुट्ट मनस्य के अनन्तर उसे एक कन्या उत्पन्न हुई ।
इसका नाम था 'धर्घट्टिका' ॥ ४ ॥

मा वर्धमाना सुमृगो पौरैः पर्वसु पूजिता ।

तद्दृष्ट्वैषकरोघोरी पूजामाजनमंत्रयम् ॥ ५ ॥

सुमृगो यह 'धर्घट्टिका' घोर घोर वृद्धि को प्राप्त होने लगी । पुरवासी पर्व (पूर्णिमा, अमावास्या, संक्रान्ति आदि) के समय उसे निमन्त्रित

कर पूजापूर्वक भोजन आदि प्रदान करते थे । किन्तु 'घर्घटिका' चौर्यवृत्ति की लड़की थी । अवसर प्राप्तकर वह निमन्त्रणदाता के पूजा के वर्तन को ही लेकर चली जाती थी ॥ ५ ॥

सप्तवर्षेव सा लोमाद्वाक्प्रांढा हृदतोरणे ।

जनन्यापण्यतां नीतालोके जालवधामिधाम् ॥ ६ ॥

जब यह लड़की अभी सात वर्ष की ही थी तभी उसने वार्तालाप में अत्यधिक निपुणता प्राप्त कर ली थी । अपनी यार्ता के द्वारा वह लोगों का मनोरञ्जन किया करती थी । उसी इस प्रवीणता को देखकर लोभपरवश उसकी माता ने बाजार के बहिर्द्वार में खड़ी होकर उसे 'जालवधा' नामक एक अन्य स्त्री के हाथ बेच दिया ॥ ६ ॥

सुवृत्तशङ्खलतिका

सकृत्कुचकञ्चुका ।

कामुकाराधर्नं चक्रे चुम्बनालिङ्गनेन मा ॥ ७ ॥

सुर्वाल बौहों वाली, कम्बुग्रीवा एवं लतिका के समान प्रलोभनीय एवं पतली शरीरवाली तथा उठनेवाले स्तनों पर कञ्चुक (बाड़ी) पहनने वाली उस बाला ने चुम्बनदान एवं कोमल आलिङ्गन के द्वारा कामुक जनों का मनोरञ्जन करने लगी ॥ ७ ॥

कुङ्कुमार्थी घणिकसन्नुदय तेनाययौ युवा ।

सुन्दरः पूर्णिको नाम पूर्णवर्णमुवर्णयान् ॥ ८ ॥

उसके उक्त व्यापार से आकृष्ट होकर, कुङ्कुम का व्यापार करने वाला सुन्दर गौर आकृष्टियाला, घनयान्, पूर्णिक नाम का एक यनिया का लड़का उसके पास आया अर्थात् उसमें अत्यधिक अनुरक्त हुआ ॥ ८ ॥

समायां नेत्रवलनालोलम्रूलास्यविभ्रमैः ।

कृष्टः कौतुकवान्भेजे चपलासंगमं निशि ॥ ९ ॥

सभा में नेत्रों के घुमाने-फिराने से चञ्चल भ्रुकुटि के नृत्य-विलासों (घुमाने में प्रतीयमान सौन्दर्यों) से आकृष्ट अतः उत्कण्ठित उस

युवक 'पूर्णि' ने रात्रि में उस चपला युवती के साथ संगम किया ॥ ६ ॥

सा तस्य खैव्यमुत्तस्य निशि कण्ठावलम्बिनी ।

निगीर्य शनकैः मयं कर्णाभरणकाञ्चनम् ॥ १० ॥

अङ्गुलीभ्यः समाकृप्य हेममालकमालिकाः ।

चौरग्रस्तेर चुक्रोश हा हतास्मीति सस्वनम् ॥ ११ ॥

रात्रि में मभाग के अनन्तर मदिरा के नशे में चूर जब कि वह युवक उस युवती को कण्ठ में लगाये सो रहा था, उस समय उसके कण्ठ में ससक्त उस युवती ने धीरे धीरे उसके (युवक के) सुवर्ण के बने हुये सम्पूर्ण कर्णाभूषणों को निकाल कर दिखा दिया और उसकी बहुलियों से सुवर्ण निमित्त अङ्गुलिया का निकाल कर चीर से पकड़ी गईं की भाँति 'हा मैं मारी गईं, मैं ठग ली गईं' कहकर बड़े जोरों से चिल्लाने लगी ॥ १०-११ ॥

प्रतिबुद्धोऽथ महमा म तया मुपितो यणिक् ।

वाममाच्छादितगिरा ययौ स्वजनलज्जितः ॥ १२ ॥

इसके बाद उसके द्वारा ठग लिया गया वह यणिक् क्रुद्धि जगकर अपने लोगों से, इष्टमित्रों से, लज्जित होता हुआ अपने शिर को वस्त्र से आच्छादित कर वहाँ से चला गया ॥ १२ ॥

ततः मा यौवनरती रुचिराभरणाम्बरा ।

उग्राम ग्रंथपुरे महणेति कृताभिधा ॥ १३ ॥

उसके अनन्तर यौवन के मद से मतमाली, रुचिर आभूषण एवं वस्त्रों को पहनने वाली वह युवती शङ्करपुर में रहने लगी । वहाँ उसने अपना नाम 'महणा' रख लिया था ॥ १३ ॥

भूरिमाग्यमरैः सक्ता मा कामिकुमुमोचये ।

लेभे संभोगमिथान्ति न रजन्यां न वामरे ॥ १४ ॥

अत्यधिक भाग्य (सौभाग्य=सौन्दर्य, जीवन आदि) समूहों से संयुक्त, कामिजनरूपी कुसुम समूह में संसक्त, वह 'महणा' न तो दिन में और न रात्रि में ही समोग से विश्राम को प्राप्त करती थी अर्थात् उसका समोग व्यापार दिन-रात चलता रहता था ॥ १४ ॥

निर्गच्छता प्रमिश्रता प्रतिपालयता वहिः ।

नभूव तद्गृहे संख्या न शुनामिन् कामिनाम् ॥ १५ ॥

उसके घर से निकलनेवाले, घर में प्रवेश करने वाले, बाहर प्रतीक्षा करने वाले कामी लोगों की, एक कुतिया के पीछे दौड़नेवाले बहुत से कुत्तों की भाँति कोई सत्या न थी ॥ १५ ॥

कूपे प्रपायामुद्याने मृदपौष्पिकपेश्मसु ।

सखीगृहे च तुल्यात्तान्ता सिपेनेऽह्नि कामुकान् ॥ १६ ॥

वह युवती 'महणा' कुँए पर, प्रपा के स्थान में, उद्यान में रसोई घर में, उद्यानशाला में, सखी के घर पर अर्थात् सर्वत्र समानरूप से विश्रवसनीय कामुकों के साथ दिन में रमण किया करती थी ॥ १६ ॥

क्षपारम्भे क्षीपं शिशुकामिन् निक्षिप्य शयने

जगामान्य तस्मिन्सुरतधननिद्रापरमपि ।

निशाशेषे शूलाकुलनिजसखीपेश्मगमना-

पदेशेनान्यं सा सततमगमत्स्रकथभरे ॥ १७ ॥

रात्रि के प्रारम्भ में अर्थात् सायंकाल मंदिरा से मत्त व्यक्ति को शय्या पर बालक की भाँति सुलाकर दूसरे कामुक के पास चली जाती थी और वहाँ भी कामुक के समोग से श्रान्त अतएव गाड़ी निद्रा में सो जाने पर दूसरे के साथ सगम करती थी। इस प्रकार रात्रि के अन्तिम प्रहर में पीड़ा से व्याकुल अपनी सखी के घर जाने के बहाने से अन्य कामुक के पास जाकर समोग करती थी। अपने सौन्दर्य से सरीदे गये व्यक्तियों के मध्य यही उसका व्यापार था ॥ १७ ॥

नानावहारकृपितः सान्विष्टा सुमगैर्मृगम् ।

पलायमाना गुप्तेषु तम्यौ कामुकवेश्ममु ॥ १८ ॥

अनेकों धूर्त व्यक्तियों के द्वारा विविध पिशुनताभरी बातों से कृपित कराये गये बहुत से सुमग (प्रियहित अथवा सुन्दर) व्यक्तियों के द्वारा अत्यधिक खोजी जाने पर वह (मझणा) भागरर कामुक व्यक्तियों के गुप्तगृहों में निवास करती थी ॥ १८ ॥

ततः प्राप्तादपालेन नन्दिमोमेन मा निधि ।

गौरीगर्मगृहं रात्रौ रागान्धेन प्रवेशिता ॥ १९ ॥

कुछ समय के अनन्तर एक रात्रि में वह रागान्ध (प्रेम में मग्न बाने) 'नन्दिमोमे' नामक प्रासाद (नगराधिप के गृह) के रक्षक के द्वारा संभोगार्थ गौरी के मन्दिर के गर्भगृह (मध्यभाग) में प्रविष्ट कराई गई ॥ १९ ॥

निःश्रामनिद्रया तम्भिन्प्रपाते काष्ठभूतताम् ।

देवालंकरणं मयं मा गृहीत्वा यया जगाम् ॥ २० ॥

संभोग के बाद उस प्रासादपाल के विश्वासपूर्वक प्रगाढ निद्रा में शयन के अनन्तर काष्ठ के समान निश्चेष्ट हो जाने पर वह पुरती देवी के सन्पूर्ण अलंकरणों को लेकर जल्दी से वहाँ से चली गई ॥ २० ॥

ततः ममरमिहम्य डामरस्यावन्दिका ।

भूत्वा नागरिकानाम प्रतापपुग्धामिनः ॥ २१ ॥

उन्के अनन्तर प्रतापपुर के निवामी वीरचेष्टावाने अर्थात् पराक्रमी 'धनरनिह' की प्रेयसी बन गई । वहाँ पर उमने नाम परिवर्तन करके अपनी नाम 'नागरिका' रख लिया था ॥ २१ ॥

प्रभूतपिशिताहारमंभारैः स्थूलतां गता ।

मा तम्य भीममेनस्य हिडिम्मेवामन्त्रिया ॥ २२ ॥

अत्यधिक भोजनहार के सेवन से स्थूलता को प्राप्त हुई वह

कामिनी, भोमसेन की हिडिम्बा की भोंति, उस समरसिंह की प्रिया बन गई ॥ २२ ॥

सर्वस्वस्वामिभावं सा संप्राप्ता तस्य रागिणः ।

प्रेरणं वन्धुयुद्धेषु विदधे निधनैषिणी ॥ २३ ॥

कामासक्त उस समरसिंह की संपूर्ण वस्तुओं पर उसी का स्वामित्व स्थापित हो गया था । समरसिंह के निधन की इच्छा से उसने उसको वन्धुओं के साथ युद्ध के लिये प्रेरित किया ॥ २३ ॥

हते पितृव्रजे तस्मिन् वद्धमूला परं गृहे ।

साभूदपरपुत्रस्य श्रीमिहस्यावरुद्धिका ॥ २४ ॥

युद्ध में पितृमरुद् के (घर के बड़े लोगों के) विनष्ट हो जाने पर, गृह में पूर्णरूप से अपने अधिकार एवं अपनी जड़ को जमाकर वह समरसिंह के एक दूसरे पुत्र (जो मरकर बड़े न थे) 'श्रीसिंह' की अवरुद्धिका हो गई ॥ २४ ॥

विगलद्यौवना यूनः सा सपत्नीजिगीषया ।

चकार तस्य स्वीकारं वशीकरणमूलकैः ॥ २५ ॥

विगलित यौवनवाली वह स्त्री युवक 'श्रीसिंह' की स्त्रियों को जीतने की इच्छा से अन्य वशीकरण आदि उपायों से उनको (श्रीसिंह को) अपने वश में कर लिया ॥ २५ ॥

मत्स्यपूषवृन्क्षीरपलाण्डुलशुनादिभिः ।

प्रत्यायनप्रसक्ताभूद्यौवनस्य प्रियस्य मा ॥ २६ ॥

वह स्त्री अपने युवक-प्रेमी 'श्रीसिंह' के आराधन (सेवन) में प्रसक्त रहा करती थी । वह उसे मत्स्य का जूस (रसा), घृत, दुग्ध, प्याज एवं लशुन आदि बल एवं कामवर्धक पदार्थ खिलाती थी ॥ २६ ॥

अथ भूपमयात्तस्य प्रत्यासत्तेऽथ भूतपे (?) ।

भूरि द्रविणमादाय साविशन्नगरान्तरम् ॥ २७ ॥

“श्रीसिंह के इस प्रकार से कामासक्त होने पर और प्रजा में अराजकता फैल जाने पर उनके पड़ोसी, प्रजापालक एक राजा ने उन पर आक्रमण कर दिया ।” समीप में आये हुये राजा के भय से वह स्त्री ‘श्रीसिंह’ की विपुल-सम्पत्ति को लेकर दूसरे नगर में चली गई ॥ २७ ॥

ततस्तनुतरस्वच्छवमना विनतानना ।

रण्डा मृगवती नाम साभूत्स्पर्शस्पृहामही ॥ २८ ॥

यहाँ पहुँच कर उस रण्डा ने अपना नाम ‘मृगवती’ रख लिया । वह अति सूक्ष्म एवं स्वच्छ वस्त्रों को धारण करती और एक कुलीना स्त्री की भाँति जन-ममूह में निकलने पर अपना शिर नीचे करके चलती थी । अब उसे कुछ दान करने की इच्छा भी होने लगी ॥ २८ ॥

सदा सुरेश्वरीं गत्वा शतधारातटे चिरम् ।

तिलवालुकदमाङ्गा सा चक्रे पितृतर्पणम् ॥ २९ ॥

बहुत दिनों तक वह ‘निरन्तर शतधारा नामक नदी के तट पर ‘सुरेश्वरी’ के पास जाकर तिलकुशादि तर्पण की ममप्र सामग्री लेकर पितृतर्पण किया करती थी ॥ २९ ॥

तत्र बन्धुगमारात्पमधारोहं महाधनम् ।

तीर्यग्मिथता मा जग्राह मत्स्यं बन्धुरिव ॥ ३० ॥

वहाँ तीर्थ में रहती हुई उसने ‘बन्धुरमार’ नामक एक महाधनी अश्वारोही को—जिन प्रकार बन्धू (बन्धुली) मत्स्य को पकड़ती है वसी प्रकार—पकड़ा अर्थात् अपने प्रेम-जाल में फँसाकर आवद्ध किया ॥ ३० ॥

गृहं मृष्ट्या गृहीत्वेव चित्तग्रहणकोविदा ।

सर्वापन्ययकार्येषु सर्व तस्याभवद्विभुः ॥ ३१ ॥

पुरुषों के चित्त को बश में करने की कला में पण्डित 'भृगवती' ने उस अश्वारोही के घर को अपनी सुट्टी में अर्थात् अपने अधिकार में कर लिया। उसके सम्पूर्ण आय व्यय आदि कार्यों का सञ्चालन 'भृगवती' ही करती थी ॥ ३१ ॥

मासेन सा गते तस्मिन्पञ्चतां बहुमंचये ।

तस्थौ पादान्गष्टम्य तस्यानुगमनोद्यता ॥ ३२ ॥

अत्यधिक धन संचय करनेवाले उस अश्वारोही के एक महीने में मर जाने पर उसके अनुगमन के लिये उद्यत अर्थात् सती होने के लिये तत्पर 'भृगवती' मृतक के पैर को पकड़ कर स्थित हो गई ॥ ३२ ॥

टिप्पणी—यहाँ यह ध्यान देना है कि 'भृगवती' का सतीत्व के लिये उद्यत होना एक नाट्यकृत था। इसने स्वल्प भी वास्तविकता न थी।

तद्वान्धर्वाचार्यमाणा मिथ्यैवारब्धदुर्ग्रहा ।

धैर्यावष्टम्भगम्भीरमुवाचार्याङ्गनेन मा ॥ ३३ ॥

उस अश्वारोही के जाति परिवार के लोगों के द्वारा मती होने से रोकी जाने पर, सती होने के लिये मिथ्या एव विरामटी आप्रह करनेवाली भृगवती ने कुलबधू की भाँति धैर्य धारण करके गम्भीर सी बाणी बोली ॥ ३३ ॥

कुले महति वैधव्यं वैधव्ये शीलनिष्ठवः ।

शीलभ्रंशे वियोगोऽयं बह्विना मम यास्यति ॥ ३४ ॥

किन्ती महान् कुल में किन्ती स्त्री का वैधव्य धारण करना महान् अमंगल एव अनर्थ का शोक ही है; क्योंकि वैधव्य की अवस्था में शीलभङ्ग (पातिव्रत्य विनाश) की आशंका बनी रहती है। अतः शीलभग में हेतुभूत यह मेरा पति वियोग बहि के साथ ही जायगा अर्थात् मैं भी जल महेंगी ॥ ३४ ॥

इत्युक्त्वा तीव्रमंकल्पनिश्चलाश्मयीन मा ।

तद्विज्ञायाद्दुर्घेण मत्तन्व्यक्तिमिवाग्रहत् ॥ ३५ ॥

ऐसा कहकर, आग में जलने के लिये तीव्र संकल्प के कारण निम्बल प्रस्तरमयी सी होकर वह उस मृतक की सम्पत्ति की उपलब्धि की प्रसन्नता से सत्त्वव्यक्ति (आनन्द एवं पुलकोद्भव आदि) को धारण सा किया ॥ ३५ ॥

टिप्पणी—पतिवियोग के अनन्तर आग में जलने के लिये वस्तु की शोकाकुल न होकर रोमन्वित, आनन्दित आदि होती है। उसके रोमाञ्च आदि सत्त्वव्यक्ति के नाम से कहे जाते हैं।

ततस्तद्रविणस्याभ्यं राजादेशादवाप्य सा ।

प्रायिता राजपुरुषैस्तस्यौ लीलावलम्बिनी ॥ ३६ ॥

मृतक की विधवा 'मृगवती' राजा के आदेश से मृतक की सम्पत्ति के स्वामित्व को प्राप्त कर अर्थात् उसकी उत्तराधिकारिणी होकर राजपुरुषों से प्रायित होकर अर्थात् राजा के अधिकारियों के द्वारा आग में जल मरने से रोकी जाकर विविध लीलाओं को करती हुई वहाँ रहने लगी ॥ ३६ ॥

अथाशशालादिविरं स्वीकृत्य रतिशड्वम् ।

मा चक्रे जीवलोकस्य स्वनामपरिवर्तनम् ॥ ३७ ॥

इसके अनन्तर अशशालाप्यश को अङ्गीकार करके उसने अश्वजाति के समान रमण-व्यापार किया अर्थात् उसकी काम घुमुशा एवं काम व्यापार पशुवन् ये, अश्वजाति के समान सर्वदा प्रचलित रहते थे। इस प्रकार प्राणिलोक के लिये उसने अपने नाम (मृगवती) का ही परिवर्तन कर डाला ॥ ३७ ॥

टिप्पणी—ऐसी प्रसिद्धि है कि श्व आदि पशु वर्ग में एक बार ही संभोग किया करते हैं। कहन्निशि इसी कार्य में लिप्त रहना उनकी प्रकृति के विपरीत है। श्वों की काम-रुचि सर्वदा अदृष्ट रहती है। इस प्रकार काम व्यापार में अपने श्वों की सरणि का अनुकरण कर अपने नाम को विपरीत निम्न किया।

तल्लामसेवया नित्यं सा तस्य स्नानकोष्ठके ।

विलामस्त्रलितालापैदिविरस्याहरन्मनः ॥ ३८ ॥

मृगयती ने उस दिविर (अश्वशालाघ्यश्च) के स्नानघर में निय ही उससे मिल कर सेवा एवं विलास से पूर्ण वार्तालाप से उनके मन का हरण कर लिया अर्थात् उस दिविर को अपने वश में कर लिया ॥ ३८ ॥

कृत्वा लुण्ठि दिग्ममखिलं भूरिभूर्जप्रयोगै-

र्भुस्तया पीत्वा निशि बहुतरं कुम्भकर्णायमानः ।

प्रातः स्नानव्यतिरूरकलादम्भमभायनाभू-

र्माद्यं दाहं नयति दिविरः शान्तिमन्तर्जनेन ॥ ३९ ॥

यह दिविर (अश्वशालाघ्यश्च) अपने र्णसङ्करबहुल मित्रों के साथ सुन्दर भोजन करके एवं मदिरा का पान करके सम्पूर्ण दिन गद्या पर इधर से उधर लोटा करता था और रात्रि में कुम्भकर्ण की भाँति अचेत होकर प्रगाड निद्रा में सोता था। प्रातःकाल, स्नान करने की कला में प्रवीणता का दम्भ भरने वाला यह दिविर अपनी मदिरा सम्बन्धी समग्र शारीरिक जलन को जल के मध्य में स्थित होकर दूर करता था ॥ ३९ ॥

टिप्पणी—यद्यपि मदिरा की जलन से व्यग्र होकर ही दिविर प्रातःकाल बहुत समय तक जल में रहता था, किन्तु पान की अधिष्ठा एवं गाररिक कमजोरी व्यक्त न हो तब एतदर्थ यह अधिष्ठ समय तक जल में रहकर अपनी स्नान की विविध कलाओं की प्रवृत्ति का प्रदर्शन करने का स्वाद रचता था।

प्रवृद्धापरपुत्राद्य

दिविराराधनप्रता ।

निखिलं जीमलोकं मा विक्रीय धनमाददे ॥ ४० ॥

मृगयती के कर्द साँतेने पुत्र थे। यह पूर्णवयस्क हो चुकी थी। दिन रात दिविर की शुश्रूषा एवं आराधना ही उसका र्त्तव्य था। इस प्रकार शुश्रूषा ने दिविर को वश में करके उसने उनके सम्पूर्ण अश्व आदि जानवरों को बेचकर सब धन अपने अधिकार में कर लिया ॥ ४० ॥

सा वेदमविक्रयादाने पुत्रैराकृष्य वारिते ।

गत्वाधिकरणं चक्रे मठिमटोपसेवनम् ॥ ४१ ॥

सम्पूर्ण जानवरों को बेचने के अनन्तर उसने घर भी बेचकर द्रव्य अपने अधिकार में करना चाहा, किन्तु जब उसके इस कार्य में उसके साँतेले पुत्रों ने बलपूर्वक प्रतिरोध उत्पन्न किया तब उसने न्यायालय में जाकर न्यायाधीशों, जिन्हें उस समय मठिमट्ट कहा जाता था, का आश्रयण किया ॥ ४१ ॥

उत्कोचारब्धसंघट्टैर्भट्टैः कूटरथादिभिः ।

सादिष्टामीष्टसंपत्तिर्जग्राह जयपट्टकम् ॥ ४२ ॥

अपने इस मुकदमे के प्रसंग में मृगरती ने न्यायाधीशों को पर्याप्त धूम दिया। उत्कोच (धूस) लेने के कारण परस्पर संघटित हुये, छल-फण्ट के आकर उन भट्टों (न्यायाधीशों) ने, सम्पत्ति की लोभी उस स्त्री को गृहह्वी सम्पत्ति पर उसके अधिकार का आदेश दे दिया। इस प्रकार उसने विजयपत्र को ग्रहण किया ॥ ४२ ॥

गृहं विक्रीय सर्वस्वं गृहीत्वा पुत्रशङ्किनी ।

सा चित्रवेपप्रच्छन्ना ययौ शाक्तमठाश्रयम् ॥ ४३ ॥

घर को बेच कर तथा सम्पूर्ण सम्पत्ति को लेकर, साँतेले पुत्रों के भयके कारण, वह चित्रवेप में छिपकर अर्थात् एक अपरिचित के वेप को धारण कर शाक्तमठ में चली गई ॥ ४३ ॥

कृष्णीकृतश्चेतकचा रङ्गाम्पङ्गेन भूयमा ।

.....जलेव सा तत्र नयपण्याङ्गनामयत् ॥ ४४ ॥

वहाँ पर उसने अत्यधिक रङ्ग (सिजाव) लगाकर अपने शिर के बालों को पूर्णतया कृष्णवर्ण का बना डाला था। अपने इस बनावट के कारण वह वहाँ युवती बेरया की भाँति प्रतीत होती थी ॥ ४४ ॥

चलित्वाभ्यागता.....वणिग्गृहः ।

इति तस्याः प्रवादेन बभूवाधिकप्रक्रियः ॥ ४५ ॥

वहाँ के लोगों में यह बात अतिशीघ्र फैल गई कि 'बाहर से एक सुन्दरी एवं माधवी वणिक् स्त्री आई है।' इस प्रकार के प्रवाद के कारण उसकी अधिक धिक्की हुआ करती थी ॥ ४५ ॥

टिप्पणी—वहाँ पहुँच कर सृगवती ने अपने को वणिग्बधू बतलाकर अपनी एक दुकान कायम कर ली थी।

सत्यासत्यकथातत्प्रमविचार्यैव धामति ।

गतानुगतिकत्वेन प्रवादप्रणयी जनः ॥ ४६ ॥

संसार के व्यक्तियों की यह अवस्था है कि 'भेड़ियाघसान' की भाँति वे, फैलनेवाली झूठी खबरों में बहुत शीघ्र विश्वास कर लेते हैं। इस प्रकार वे सत्य एवं असत्य कथाओं के सत्त्व को बिना विचारे ही किसी बात की ओर दीड़ने लगते हैं ॥ ४६ ॥

क्षीणजिह्वाधरकरा कोपपानेन कामिनाम् ।

छिन्नाहुलिः सा जग्राह रागवेलां पुनः पुनः ॥ ४७ ॥

कामी लोगों के समूह में कोपपान (मदिरापान) के कारण अर्थात् मत्तता की अवस्था में उन्मत्त कामुक व्यवहार के कारण उसको जिह्वा, उसका अघर एवं कोमल कर, दन्तशृङ्ग तथा नखशृङ्ग के कारण, परिव्याप्त हो जाते थे। इस प्रकार छिन्नाहुलि वाली यह स्त्री धारम्भार रागवेला (अनुराग अथवा रक्तिमा) को धारण करती थी ॥ ४७ ॥

सा चौरद्विणादानाद्युहोता श्रुतचेटकैः ।

प्रत्यक्षापहववती मुवद्वा बन्धने धृता ॥ ४८ ॥

यह चोरी किये गये धन को ग्रहण करती थी। इसी प्रकार के कार्य में यह एकबार दुष्ट-नोरों अथवा दुष्ट व्यभिचारियों के द्वारा पकड़ी गई। पकड़ी जाने पर जब उसने अपने कृत्य को स्वीकृत न करके छिपाने की चेष्टा की तब बन्धन (हथकड़ी) में बाँधकर चन्दनागार (कारागार) में डाल दी गई ॥ ४८ ॥

तत्र बन्धनपालेन भुजंगाख्येन संगता ।

निर्विकल्पमुखा चक्रे मत्स्यापूपमधुक्षयम् ॥ ४९ ॥

वहाँ भी उसका व्यभिचारकर्म जारी रहा । वह कारागार के रक्षक 'भुजङ्ग' के साथ व्यभिचार में आसक्त होकर पूर्ण आनन्द का मजा लेती हुई मत्स्य, अपूप (पुआ) एवं मधु (मदिरा एवं शहद) का रस उपभोग करती थी ॥ ४९ ॥

माथ बन्धनपालस्य गाढालिङ्गनसंगमे ।

क्षीयस्य चुम्बनासक्ता जिह्वां चिच्छेद मुक्तये ॥ ५० ॥

एक समय, जब कि गाढालिङ्गन की प्रक्रिया प्रचलित थी, चुम्बन में आसक्त वह स्त्री अपनी मुक्ति के लिये मदिरा के नशे में मत्त कारागार के रक्षक की जिह्वा को काट डाला ॥ ५० ॥

सा जिह्वाछेदनिःसंज्ञं तमाक्रन्दविवर्जितम् ।

स्त्रीवेपं स्वांशुकैः कृत्वा जगामोत्क्षिप्तान्ध्रला ॥ ५१ ॥

जिह्वा के कट जाने से बेहोश अतः आक्रन्दन से रहित उस रक्षक को देखकर उस स्त्री ने वेणी को फेंककर तथा अपने बच्चों से, अच्छी प्रकार से, घूँघट आदि बनाकर वहाँ से निकल भागी ॥ ५१ ॥

सा भग्ननिगडा प्राप्य रजन्यां विजयेश्वरम् ।

महामान्यमुतास्मीति जगादानुपमाभिधाम् ॥ ५२ ॥

वेणी-रहित वह स्त्री रात्रि में ही विजयेश्वर के पास पहुँची । वहाँ उमने कहा कि मैं महामन्त्री की पुत्री हूँ । मेरा नाम 'अनुपमा' है ॥ ५२ ॥

सा तत्र भोगमित्रस्य प्रीत्या रवैरवाकिरत् ।

पुराणचित्ररूपस्य यौवनस्याल्पशेषताम् ॥ ५३ ॥

वह वहाँ पर भोग (सुरति) के मित्र प्राचीन अर्थान् अतिप्रौढ़ तथा प्रसाधनों के द्वारा विचित्र रूप से सज्जित रूप से समन्वित

यौवन की स्थलावशिष्ट अवधि को प्रसन्नतापूर्वक रत्नों से परिव्याप्त कर दिया अर्थात् वहाँ वहाँ पर रत्नों को धारण करके अपने सौन्दर्य को वृद्धिब्रत करती थी ॥ ५३ ॥

यत्नोत्क्षिप्तकृचा कचायततया करे

बद्धापाटलपटकेन सरलस्थूलाञ्जनव्यञ्जना ।

नासार्धाग्रधि वाममा च वदनं संछाद्य विद्याधरी

केयं नृतननिर्गतेति प्रिदधे मा मुग्धममोहनम् ॥ ५४ ॥

प्रथमपूर्वक स्रस्तस्तनों को ऊपर उठाकर अर्थात् युवतियों के स्तनों की भाँति उन्नत, सोपा एव कठोर बनाकर, शिर के बालों की पर्याप्त लम्बाई के कारण एव हाथ में बाँधे हुये रक्तवर्ण के पट्टक से द्विगुणित शोभावाली आँखों में सीधे अर्थात् कान की ओर बढ़ने वाले एव स्थूल अञ्जन लगाये हुये वह स्त्री जब यस्त्र से अपने आधी नासिका पर्यन्त मुख को ढक कर निकलती थी तब “यह कौन सी नवीन विद्याधरी निकली है ?” इस प्रकार कहने वाले भोले भाले व्यक्तियों को सम्मोहित कर लेती थी ॥ ५४ ॥

तामेकवारं दृष्ट्वा नग्रां प्रथमकौतुहात् ।

पद्यापि तेन वैरम्यान् कश्चित्पुनराययौ ॥ ५५ ॥

यद्यपि बाह्य कृत्रिम प्रसाधनजन्य उसके सौन्दर्य को देखकर प्रथम बार उत्पन्न उत्कण्ठाके कारण लोग उमरे पाम जाते थे और यदि उसे एक बार भी नग्न (यथार्थ रूप में) देख लेने थे तो उन्हें उसने इतनी प्रियता मालूम होती थी कि वे पुनः दूसरी बार उमरे पास नहीं जाते थे ॥ ५५ ॥

टिप्पणी—गलितयौवना स्त्री के सिद्धे हुये चाम वाले शरीर को देखकर भला किम व्यक्ति को उसके साथ संभोग में आनन्द हो सकेगा ? यही लोगों के वैरस्य का कारण होता था ।

शीतशालेन शिशिरे दीपमालेन वासरे ।

जीर्णा निर्माल्यमालेन वेश्या कस्योपयुज्यते ॥ ५६ ॥

जाड़े की श्रुतु में शीतल घर, दिन में दीपमाला एवं जीर्ण, निर्माल्य माला की भाँति गलितयौवना वेश्या भला किस व्यक्ति के द्वारा भोगी जा सकती है ? अर्थात् कोई भी व्यक्ति वृद्धा वरया के समोग की ओर आकृष्ट नहीं होता ॥ ५६ ॥

सा तत्र ग्राहकामागन्मृप्यन्ती पथिकांश्वलान् ।

मंघायामञ्जलाकपंः स्तल्पभाटीमयाचत ॥ ५७ ॥

यह वहाँ पर ग्राहक कामुकों के अमात्र में कुछ चंचल अर्थात् कामुक चित्तगाल पथिकों को रोजती हुई सन्ध्या के समय अपना अञ्जल फैला फैला कर आजीविनारूप भिक्षा माँगा करती थी ॥ ५७ ॥

तपस्विनी शिष्याख्या सा सङ्गं चक्रे तपस्विना ।

तत्र भैरवसोमेन भिक्षामक्तार्घदायिना ॥ ५८ ॥

जीविता के अन्य साधन को न देखकर यह तपस्विनी हो गई और उसने अपना नाम 'शिष्या' रख लिया । उस अवस्था में 'शिष्या' ने 'भैरवसोम' नामक तपस्वी का साथ पकड़ा । 'भैरवसोम' अपनी भिक्षा के भोजन में से आधा उस 'शिष्या' को दिया करता था ॥ ५८ ॥

भस्मस्मेरशरीरसंचितरुचिर्दत्ताक्षिजीवाञ्जना

मित्राणा स्फटिकान्धमूत्रममलं वैचित्र्यमित्त्रं गले ।

निःमंकोचनिलीनरुञ्जुरुचत्मुस्तन्धनाहुस्तनी

साभूत्क्षोभमिधायिनी हतधियां भिक्षाक्षणे निर्गता ॥ ५९ ॥

भस्म लेपन से शरीर के सौन्दर्य का सचय करनेवाली, आँखों में जीरा (वचा) के अञ्जन को लगानेवाली, कण्ठप्रदेशमें वैचित्र्यसयुक्त, निर्मल, स्फटिक की माला पहनने वाली, शरीर में अतिमात्र चिपके

हुए अर्थात् बिना संकोच के कसकर पहने गये कञ्चुक (कुर्ती, ब्लाउज) से कसे अत एक सुगठित छिने गये बाहु और न्ठन वाली, वहां खी जब भिक्षा के लिये निकलती थी तब निर्बुद्धि लोगों के मन में विश्लेष उत्पन्न कर देती थी अर्थात् उन्ने देखकर बहुत से निर्बुद्धि व्यक्ति कामातुर हो उठने थे ॥ ४८ ॥

जाते तत्राय दुर्मित्रे मिश्रामक्तेऽतिदुर्लभे ।

सा रात्रौ देवमात्रादि ययौ हृत्या तपस्विनः ॥ ६० ॥

जब उसके जीवन का क्रिया कलाप इस प्रकार चल रहा था तभी वहाँ दुर्मित्र पड़ा । ऐसी अवस्था में भिक्षा-भोजन का मिलना भी कठिन हो गया । परिस्थिति की इस बिकटता में एक रात को वह 'शिरा' उम तपस्वी के देवामूर्ख आदि को लेकर वहाँ से चली गई ॥ ६० ॥

सा कृत्याश्रमकं गत्वा विहारं हारितस्थितिः ।

मिथुकी वज्रघण्टारूपा बभूव ध्याननिथला ॥ ६१ ॥

परिस्थिति की मारी वह मिथुकी 'कृत्याश्रमक' नामक विहार में जाकर, ध्यान-तत्पर होकर, रहने लगी । वहाँ उसने अपना नाम 'वज्रघण्टा' रख लिया था ॥ ६१ ॥

पात्रं तत्र गुणोचितं करतले कृत्वाऽथ भिक्षास्पदं

जीर्णं कामुककूटरागसदृशं कापायमादाय सा ।

चक्रे मुण्डनमण्डनं परिणमत्कृष्माण्डखण्डोपमं

पिण्डाप्त्यै विटटकनापरिचयश्रेणीविहारं शिरः ॥ ६२ ॥

वहाँ पर उनने संन्यासिनियों के योग्य, भिक्षालायक पात्र को हाथ में लेकर, कामुकव्यक्तियों के दृष्टिल राग के सदृश अथवा कामुक व्यक्तियों के राग के सदृश, जीर्ण गेरुआ वस्त्र को लेकर, पिण्ड (करल, प्राप्त) की प्राप्ति के लिये, कामुक व्यक्तियों के टोंकने के आश्रयस्थल (कामुक व्यक्ति संभोगोदीपन के लिये क्षम-परिहास के

अन्य प्रेमपूर्वक चेश्याओं के शिर में हाथ से ठोका करते हैं), शिर को मुण्डित करा दिया । मुण्डित किया हुआ उसका शिर ऐसा लगता था जैसे पके हुये कूमाण्ड (कोंहड़े) का खण्ड हो ॥ ६२ ॥

पट्वी मण्डलशिक्षायै प्रणतानां सदैव सा ।

गृहे गृहे कुलस्त्रीणां ददौ दौःशील्यदेशनाम् ॥ ६३ ॥

प्रणत अर्थात् श्रद्धालु व्यक्तियों को दिव्य शिक्षा देने में प्रवीण वह स्त्री सर्वथा घर घर में घूमकर कुलस्त्रियों को दुःशीलता की शिक्षा दिया करती थी ॥ ६३ ॥

वश्यप्रयोगैर्गैश्चानां वणिजामृद्धिवर्धनैः ।

मन्त्रवादेन मूर्खाणां सा परं पूज्यतां ययौ ॥ ६४ ॥

व्यक्ति को अपने घर में करने के उपायों को बतला कर चेश्याओं की, सम्पत्ति बढ़ाने के उपायों को बतला कर व्यापारियों की एवं मन्त्रों के द्वारा कार्य सिद्धि की बात कहकर मूर्खों की परं पूज्यता को वह प्राप्त हुई ॥ ६४ ॥

तत्रोपामकदासेन मङ्गलाख्येन संगता ।

सा गर्भं दम्भभोगानां मूर्तं निश्नमिवादधे ॥ ६५ ॥

वहाँ पर उस स्त्री ने मठ के पुजारियों की सेवा करने वाले मङ्गलनामक व्यक्ति के साथ संसर्ग के परिणाम-स्वरूप गर्भ को धारण किया । उसका यह गर्भ उसके आढम्बरपूर्ण भोगों का मूर्तिमान निम्न था ॥ ६५ ॥

निच्छिन्ने पिण्डपाते मा लम्बमानमहोदरी ।

प्रसूता घर्ममुत्सृज्य जगाम नगरं पुनः ॥ ६६ ॥

इस प्रकार अशिक्षा के साधनभूत, आढम्बर से प्राप्त, भोजन की प्राप्ति के समान हो जाने पर, गर्भ के कारण लम्बमान उदर वाली माँ स्त्री दशा पैदा करने के अनन्तर अपने स्वीकृत मन्यानिनी घर्म छोड़ कर पुनः नगर में प्रविष्ट हुई ॥ ६६ ॥

कृदकेशवती तत्र चित्रसेनस्य मन्त्रिणः ।

पुत्रजन्मनि सा पुण्येः पत्न्या धात्री प्रवेशिता ॥ ६७ ॥

कृत्रिम केश को धारण करने वाली वह स्त्री, वहाँ नगर में, चित्रसेन नामक राजा के मन्त्री के घर में पुत्र पैदा होने पर उनकी स्त्री के द्वारा, सौभाग्यवश धात्री (घाई) के रूप में अपने घर में रख ली गई ॥ ६७ ॥

सार्धक्षीराभिघा धात्री सिंहपादवृत्तीस्थिता ।

नालोत्सङ्गा गृहं सर्वं प्राप्तीकर्तुमिच्छत ॥ ६८ ॥

यहाँ पर उस धात्री का नाम 'अर्द्धक्षीरा' रक्खा गया, यह वह आधा दूध अपने बच्चे को पिलाती थी और आधा मन्त्री के शिशु को । मन्त्री के बालक को गोद में लेकर दिन भर बहलाने वाली यह धात्री उस सम्पूर्ण गृह को ही प्राप्त कर जाना चाहती थी अर्थात् उसकी इच्छा उस सम्पूर्ण घर का अपने अधिकार में कर लेने की थी ॥ ६८ ॥

क्षीरसंक्षयरक्षायै संप्राप्तसरसाशना ।

सा मन्त्रिभवने धात्रा धात्री पात्रीकृताश्रियः ॥ ६९ ॥

दूध में कमी न हो जाय एतदर्थ उस धात्री को खूब सरस (बिटा-मिन पूर्ण) भोजन दिया जाता था । इस प्रकार मन्त्री के घर में रहने वाली यह धात्री बिघावा के द्वारा शोभा और सम्पत्ति का भाजन बना दी गई ॥ ६९ ॥

कण्ठं विद्रुममालिका श्रमणयोस्ताढीयुगं राजतं

स्थूलस्थूलनिमक्तिमक्तपटकराग्भारभाजौ भुजौ ।

गुल्फास्फालनिलम्बिकम्बलघनारम्भा नितम्बस्थली

धायाः संभृतभोजनैरमिनीभृतं पुराणं वपुः ॥ ७० ॥

सरस, उत्तम, पर्याप्त भोजन के द्वारा उस धात्री का पुराना ढीला ढाला शरीर नवीन सा हो गया । उसने कण्ठ में विद्रुममाला पर

श्रवणों में रत्ननिभित ने कर्णामूषण शोभा पाते थे। उसकी मोटी-मन्ती चुचाएँ ऊपर की ओर प्रियस्वरूप से प्रतीयमान, ससक्त मास-पिण्डों से अपन ऊर्ध्व गुम्ना को यातित करती थीं। उसकी नितम्ब स्थली मोटी अत एव घनी थी। उनके चलने के समय गुच्छ (टल्लनी) के झालने से दिलनयान केशपाश इसके नितम्ब के आकर्षण को वृद्धिद्वन्द्व करते थे ॥ ७० ॥

ततस्तदपचारेण शिशां जातज्वरे व्यधात् ।

वैद्यदत्तोपनामा ना मत्स्यमूषपरिक्षयम् ॥ ७१ ॥

इदं समय के अनन्तर उस धात्री के खान पान पर आचरण-मन्थनही गड़बड़ी के कारण, स्तन्य की प्रकृति से, बालक (मन्त्री का लड़का) बीमार पड़ गया। अतः वैद्य ने उसे उपवास करने की आज्ञा दी। अपन इन उपवास के निमित्त ने एक धात्री केवल मछली का सूप (रस) ही लेती थी ॥ ७१ ॥

पानीयं विनिवारणीयमहितं भक्तस्तु दुर्जन का

द्वित्राण्येन दिनानि धात्रिदयया धात्रीरमः पीयताम् ।

जीमत्वेप शिशुर्मजस्व विविधैरम्योऽसुरैः मेपदं

वैद्यनेति निवेद्यमानमकरोत्मा सर्वमेवाश्रुतम् ॥ ७२ ॥

वैद्य ने उस धात्री से इस प्रकार कहा — 'पानीय (मदिरा अथवा जल) अहितकर है अतः उसका परित्याग कर देना चाहिये अथवा अहितकर पानीय नहीं पीना चाहिये, मातृ (पिता चायन) भी अहित कर होगा अतः वह भी अप्राप्त है। बालक पर स्वमातृ पर्यमान धात्री (घाई) की दया के कारण दो-तीन दिन तक धात्री (आमला) का रस पीओ। इस प्रकार जब यह बालक स्वस्थ हो जाय तब तुम विविध उत्सवपूर्वक इसकी सम्पत्ति का सेवन करो।' वैद्य के इस तरह के आदेश को सुन कर उस धात्री ने इन सभी बातों का चिन्तन करने कभी नहीं सुना था, पालन किया ॥ ७२ ॥

दृष्ट्वा तत्रातुरं बालं तृणमत्सुतरागिणी ।

सा ययौ निर्दया रात्रौ गृहीत्वा हेमसूतिकाम् ॥ ७३ ॥

वस्तुतः उस घात्री का बालक पर स्नेह तृणवत् था । अतः बालक को मरणामञ्ज देकर निर्दय वह स्त्री रात्रि में शिशु के सुवर्ण निमित्त आभूषण आदि को लेकर अन्यत्र चली गई ॥ ७३ ॥

ततः प्रत्यन्तपिपये प्रभूतच्छागगोचरा ।

ख्याता धनवती नाम स्फीता चक्रे गृहस्थितिम् ॥ ७४ ॥

वहाँ से भागने के अनन्तर वह स्त्री पर्वत के समीप बसे गाँव में जाकर रहने लगी और अपने पास बहुत से बकरे चरारियों को रख लिया । वहाँ के लोगों में वह धनवती के रूप में प्रसिद्ध थी । यहाँ रह कर उसने गृहस्थी को पर्याप्त समृद्ध कर लिया था ॥ ७४ ॥

साथ मेघापघातेन तस्मिन्पशुघने वने ।

स्वकाय इव सापाये याते चर्मोपशेषताम् ॥ ७५ ॥

गृहीत्वा पशुपालस्य स्थूलं निक्षेपकम्बलम् ।

गत्वावन्तिपुरं चक्रे ताराख्यापूपप्रिक्रयम् ॥ ७६ ॥

कुछ समय के अनन्तर अत्यधिक प्रबल वृष्टि होने के कारण अपने शरीर की भाँति सम्पूर्ण पशुघन के जंगल में जधवा जल में विनष्ट हो जाने पर, चमड़े (चर्म) मात्र के हाथ लगने पर, वह स्त्री पशुपाल (पशुओं के रक्षक चरवाहे) के द्वारा अपने पास घरोदर रूप में रक्ते बहुत से कम्बलों को लेकर वहाँ से अन्तिपुरी को चली गई जहाँपर उसने अपूप (पूजा) बँचने का कार्य प्रारम्भ किया ॥ ७५-७६ ॥

क्रीत्वा गणेशनैवेद्यमण्डकानां करण्डकम् ।

पुनः पाकोष्मणा नित्यमकरोद्विक्रयं पथि ॥ ७७ ॥

गणेश को नैवेद्य के रूप में समर्पित अण्डों की टोकरीयों की सरीद

कर और उन्हें अग्नि से सिद्ध कर अर्थात् पका कर वह पुनः उन्हें मार्ग में बैठा करती थी। यही उसका दैनन्दिन कार्य था ॥ ७७ ॥

टिप्पणी—यहाँ पर अग्नि से, अ-वाहति मोदकपिण्ड का अर्थ समझना चाहिये। इन्हीं मोदक पिण्डों को खरीद कर और उन्हें पुनः ताना कर वह बैठा करती थी।

माभुङ्क्त गृहनारीणां प्रभूतोद्गामतण्डुलम् ।

प्रभूतलामलुब्धानां मूलस्यापि परिक्षयः ॥ ७८ ॥

अत्यधिक लाम के लोभी व्यक्तियों के मूलघन का भी परिक्षय हो जाता है। जन उस लोभी का वह व्यापार न चल सका और पास की सम्पत्ति भी समाप्त हो गई तब वह गृहनारियों के द्वारा फेंके गये तण्डुलों को अर्थात् भोजन को ही खाती थी ॥ ७८ ॥

पान्थकन्यां घृताभ्यक्ता कृत्वा कुशलिकाभिधा ।

मिथ्यासन्ननिवाहार्थमपाचत गृहे गृहे ॥ ७९ ॥

जमने अब अपना नाम कुशलिका रख लिया था। कुशलिका मार्ग में भँख माँगनेवाली एक लड़की के शरीर में घृत पोतकर घरों में घूम-घूम कर यह कह कर घन माँगती थी कि 'मुझे इस कन्या का विवाह अति शीघ्र करना है, अतः इसके लिये आप सहायता करें' ॥ ७९ ॥

ततः सा पञ्जिका नाम द्यूतशालापुरःस्थिता ।

कपटाक्षशलाकानामकरोद् गूढविक्रयम् ॥ ८० ॥

इसके अनन्तर उस स्त्री ने अपना नाम 'पञ्जिका' रख कर, द्यूत-शाला के मानने स्थित होकर गुनरूप से कपटाक्षशलाका का विक्रय किया करती थी ॥ ८० ॥

टिप्पणी—कपटाक्षशलाका, जुआ (दून) खेलने का वह पाया है जिसके खेलने में एक विशेष प्रकार की बलाघो अनेकित होती है और ऐसा करने से दूसरा जुआरी अवश्य ही पराजित हो जाता है।

सा पौष्पिकी मुकुलिका कृत्वा निर्माल्यविक्रयम् ।

देवप्रासादपालानां मूल्यं भुक्त्वा ययां निशि ॥ ८१ ॥

इसके अनन्तर अपने को 'मुकुलिका' नाम की मालिन बतलाने वाली अथवा अपने आपको पाटलिपुत्र से आई हुई 'मुकुलिना' बनलाने वाली वह स्त्री देवताओं के निर्मान्य को बेच कर अपनी जीविना चलाती थी । कुछ समय बीत जाने पर देव मन्दिरों के रक्षकों का ऋण खापर रात्रि में वह वहाँ से अन्यत्र चली गई ॥ ८१ ॥

ग्रामयात्रासु मा वारिमन्त्रदात्री हिमाभिधा ।

रङ्गप्रेक्षणपालानां निनाय बलयादिकम् ॥ ८२ ॥

अपनी ग्राम यात्रा के प्रसङ्ग में उमने अपने आपको पौसला (प्याऊँ) चलाने वाली 'हिमा' बनलाया । 'हिमा' नाटक आदि देखने में तल्लीन बच्चों के घलघ आदि न चुरा लाया करती थी ॥ ८२ ॥

मा नक्षत्रपरावृत्तिं कृत्वा पट्काष्टकेष्वपि ।

त्रिगहेष्वरुणोद्यत्नं वर्णारुपा कूटवर्णनैः ॥ ८३ ॥

कुछ समय के अनन्तर उमने अपना नाम 'वर्णा' रखा । 'वर्णा' पट्चक्र एवं अष्टपत्र में नक्षत्रों का विन्यास एवं परिवर्तन करके आढम्बरपूर्ण असत्य वर्णनों के द्वारा लड़कों एवं लड़कियों के त्रिगह का योग बैठाने का कार्य करती थी ॥ ८३ ॥

गणविज्ञानिका मुग्धप्रत्ययैः रुधातिमायया ।

नामामिज्ञानमात्रज्ञा न तु चौरान्विवेद सा ॥ ८४ ॥

मौली भाली जनता का विश्वास था कि यह 'वर्णा' ज्योतिष का बहुत अच्छा ज्ञान रखती है । उनके इसी विश्वास के कारण उसे बड़ी प्रसिद्धि प्राप्त हुई यह एकमात्र नाम को पहचानने वाली थी अर्थात् चोरों का नाम निकालने वाली थी, किन्तु चोरों की सही पहचान वह नहीं कर सकती थी ॥ ८४ ॥

भावसिद्धयभिधाना सा देवतावेशधारिणी ।

उपहारान्प्रयच्छेति वदन्ती नावदत्परम् ॥ ८५ ॥

पुनः उसने देवता के वेश को धारण कर अपना नाम 'भावसिद्धि' रक्खा । 'भावसिद्धि' लोगों से यही कड़ा करती थी कि 'उपहार समर्पित-करो' इसके अतिरिक्त वह और कुछ भी न बोलती थी ॥ ८५ ॥

तत उन्मत्तिका भूत्वा सा नम्रालिङ्गिता श्रमिः ।

कुम्भादेवीति विख्याता प्राप पूजापरम्पराम् ॥ ८६ ॥

इसके बाद वह उन्मत्त स्त्री नम्र होकर रहती तथा कुत्तों की वृत्ति अपनाने वाले अर्थात् आचार पिद्दीन युवकों के द्वारा आलिङ्गित होती थी । वह 'कुम्भा देवी' के नाम से विख्यात थी । लोग सिद्ध स्त्री की वृत्ति से उसकी बहुत पूजा करते थे ॥ ८६ ॥

टिप्पणी—अतीत में अवन्ति नगरी कापालिकों का गढ़ थी । कापालिक मंदिरा पीते, उन्मत्त एवं नग्न रहते थे । पूजा के समय अथवा सामान्य समय में भी उन्मत्त आचरण—स्त्री का आलिङ्गन एवं सम्भोग आदि—उनके प्रधान कर्म थे । उनका विश्वास था कि इसके उन्हें सिद्धि मिलेगी और उनके देव (शिव) प्रसन्न भी होंगे । आचार्य शङ्कर जी भी इसी प्रकार के आचरण वाले कापालिक के साथ भेंट का उल्लेख मिलता है ।

अप्रोपदेशलुब्धेन कुलदासेन मन्त्रिणा ।

सार्चिता प्रयया हत्वा पूजाराजनमाजनम् ॥ ८७ ॥

अतिशीघ्र उसके उपदेश से मुग्ध अथवा 'अप्रोप' नदी के तट पर दिये गये उस स्त्री के उपदेश से मुग्ध मन्त्री 'कुलदास' ने उसका बड़ा आदर सम्मान और पूजन किया । अवसर मिलने पर वह मन्त्री जी के चाँदी के बने पूजा के बर्तनों को ही लेकर चली गई ॥ ८७ ॥

साध तलकयात्रायां चलदृष्टा दिनत्रयम् ।

कल्पपाली कला नाम विदधे मद्यविक्रयम् ॥ ८८ ॥

यहाँ मे भागने के बाद अनवस्थित व्यवहार वाली वह स्त्री तक्षक-यात्रा में (तक्षकनामक स्यान की यात्रा में; तक्षक के साथ यात्रा में, सूत्रधारिक यात्रा में, अथवा सर्प के समान कुटिल यात्रा में) अपना नाम 'कल्पपाली कला' रख कर तीन दिन तक मदिरा पीचने का कार्य करती रही ॥ ८८ ॥

कटिघण्टामिधानस्य सा क्षीवस्य तपस्विनः ।

रात्रौ तत्र प्रसुप्तस्य घण्टाः सप्त समाददे ॥ ८९ ॥

यहाँ पर उसने रात्रि में सोये हुए, मदिरा से मत्त, 'कटिघण्टा' नामक तपस्वी के सात घण्टों को चुरा लिया ॥ ८९ ॥

ततः सा भूरिघत्तूरमधुना नष्टचेतसाम् ।

पान्थानां सर्वमादाय निशि शूरपुरं ययौ ॥ ९० ॥

उसके बाद कपटपूर्वक अत्यधिक घत्तूर से मिश्रित 'मधु' को खिलाने और उसके फलस्वरूप बेहोश होने पर यात्रियों के सम्पूर्ण सामान को लेकर वह रात्रि में ही 'शूरपुर' को चली गई ॥ ९० ॥

एवं कृत्वा लवणमरणौ भारिकं भर्तृमंजं

तस्मिन्निद्रावशमुपगते रात्रिमन्यः क्षिपन्ती ।

प्रातर्बद्ध्वा पृथुकटितटं संकटे दीर्घदाम्ना

भूर्भा भारं दिवसमखिलं सा विलासैरुवाह ॥ ९१ ॥

मनुष्य की ओर बढ़ने वाले मार्ग पर 'भर्ता' नाम वाले भारिक (घोमा ढोने वाले) को इसी प्रकार घत्तूर मिश्रित मधु खिलाने और बेहोश हो जाने पर उसका सामान लेकर दूसरे लोगों के साथ रात्रि बिताती हुई प्रातःकाल अपने पृथु कटितट को लम्बी रस्मी से बसकर बाँधकर उस स्त्री ने विलासपूर्वक पूरे दिन तक अपने शिर पर चोरी किये गये अथवा ठगकर प्राप्त किये गये सामानों के गट्टर को ढोया ॥ ९१ ॥

निःशुष्कैरतटैर्महाहिमपथैरुल्लङ्घ्य घोरान्गिरीन्
वम्बानाम दिनावसानममये मान्याङ्गनारूपिणी ।

हेमन्ते वसनावगुण्ठितमुखी पञ्चालधारामठे
शीतार्ता घनलम्परुम्बलरती चक्रे स्पृहां कातरा ॥ ९२ ॥

नितरा शुष्क अवपट, बड़े बड़े बर्फीले मार्गों से मयकर पर्वतों को लाँच कर हेमन्त ऋतु के सायंकाल के समय वह स्त्री 'वम्बई' पहुँची । उसका स्वरूप कुलीन स्त्री की भाँति था । उसने घूँघट से अपने मुरा को ढँक रक्खा था । उसके शिर के बाल घने और लम्बे थे । वह शैत्य के कारण काँप रही थी । वहाँ पहुँच उसने पञ्चाल देरा के राजा के द्वारा संस्थापित 'धारामठ' में रहने की स्पृहा की ॥ ९२ ॥

साय सत्यवती नाम वृद्धा ब्राह्मण्यवादिनी ।

यन्नाम मागरद्वीपरशनामरणां भुवम् ॥ ९३ ॥

अपने आपको मत्स्यवती नामक ब्राह्मणी घतलाने वाली उस वृद्धा स्त्री ने समुद्र पर्यन्त पृथिवी पर भ्रमण किया ॥ ९३ ॥

क्वचिद्योगकथाभिज्ञा क्वचिन्मासोपचामिनी ।

क्वचितीर्थार्थिनी मिथ्या सा परंपूज्यतां यया ॥ ९४ ॥

फर्ती पर योगाभ्यास के बहाने; कहीं पर मासपर्यन्त उपवास करने के बहाने से, कहीं पर तीर्थयात्री बनकर, झूठी वह स्त्री लोगों के परम श्रद्धा का भाजन होती थी ॥ ९४ ॥

वेधधूननधूपेन मूर्खथद्वारिघायिनी ।

महतीं प्रतिपत्तिं सा लेभे भूपतिवेदमसु ॥ ९५ ॥

प्रच्छन्न रूप से ज्ञात वस्तु को अज्ञातरूपसे प्रकाशित कर देने के कारण, मूर्खों को अपने प्रति श्रद्धालु बनाने वाली उस स्त्री ने राजाओं (धनिकों) के घर में अत्यधिक धन एवं सम्मान प्राप्त किया ॥ ९५ ॥

सेनास्तम्भं ऋरिष्यामि राज्ञा दृत्तेति र्णनम् ।

भुक्त्वा हेम ययौ रात्रौ प्रत्यामने रणोद्यमे ॥ ९६ ॥

यहाँ जमने राजा मे ज्ञा कि 'मैं आपके शत्रुपक्ष के सैन्य का स्तम्भन कर दूँगी।' परिणाम-स्वरूप राजाने उसे प्रभूत सम्पत्ति दी और उसका बड़ा सम्मान दिया। किन्तु मराम के उपस्थित होने पर रात्रि में ही वह चुपके से भाग निकली ॥ ९६ ॥

नेदाराभ्युगयाश्राद्गङ्गास्नानादिवादिनी ।

तत्फलं जन्धमाधाय मार्येभ्यः माग्रहीद्वनम् ॥ ९७ ॥

'नेदारनाथ का दर्शन, गया में श्राद्ध और गंगासागर तथा गंगा में स्नान करके आयी हूँ। ऐसा कहकर तथा वहाँ के कुछ फल एवं जन्धन (ये सब चूटे होते थे) को धनियों के सामने रखकर वह जन्धने धन लिया करती थी ॥ ९७ ॥

नष्टच्छायोपदेशार्थं सार्धिता पथि दस्युभिः ।

रुद्रा शिप्रिक्रया र्पं प्रपलाप्य ययौ ततः ॥ ९८ ॥

मार्ग में जब वह जा रही थी तब कुछ दस्युओं ने उसकी हमलिये मार्यना की कि वह उन्हें विस्मृति की अवस्था में सही मार्ग अथवा रस्तु का उपदेश करेगी। वह उनके द्वारा र्पपर्यन्त शिपिका (पालकी) पर चढ़ा कर ढोई जाती थी, किन्तु अन्त में वह वहाँ से भी भाग कर चली गई ॥ ९८ ॥

चीनानरानामण्डानि साथ रुद्राक्षमंत्रया ।

दर्दा मूल्येन शिष्याणां रुद्राक्षाधिस्यनादिनी ॥ ९९ ॥

वहाँ से भागने के बाद वह श्री रुद्राक्ष के माहात्म्य को घटला-घटलाकर मूर्ख शिष्यों से मूल्य लेकर रुद्राक्ष के नाम पर चीनानक- (वृक्षविशेष) के अण्ड (फल के मोवर की गुठली) को बेचा करती थी ॥ ९९ ॥

विलसिद्विधृतश्रद्धागृहीताभरणाम्बरान् ।

सा चिक्षेपान्धकूपेषु पातालललनोत्सुकान् ॥ १०० ॥

उसके मन्त्रों के द्वारा पाताललोकगामी विल (सुरंग) निर्माण में श्रद्धा रखने वाले लोगों के, जो कि पाताललोक की सुन्दरियों के लिये लालायित रहते थे, वस्त्र एवं आभूषण आदि को लेकर वह उन्हें अन्ध-कूपों में गिरा देती थी ॥ १०० ॥

अङ्गविद्विषास्मीति मुस्निग्धविपगण्डकैः ।

सा यद्यन्ध गले मालां विपज्ञाद्गुलिकाभिधा ॥ १०१ ॥

कही कही वह यद कहा करती थी कि मेरा नाम 'विपज्ञाद्गुलिका' है। 'मेरे अङ्गों में विष व्याप्त है।' वह सुन्दर, चिकने, विपलित गण्डकों (गंढा) में गुम्फित माला को अपने गले में बाँधा करती थी ॥ १०१ ॥

शुल्कस्थानेषु सर्वेषु शौलिकेभ्यः स्वभावतः ।

मुहूर्तमोहनं पुष्पं सा दद्यात् स्वेच्छया ययौ ॥ १०२ ॥

समस्त शुल्क (कुंजी) के स्थानों में अधिकारियों को 'मुहूर्तमोहन' नामक पुष्प, जो कि देखने में बहुत सुन्दर होता था, देकर वह स्वेच्छया, बिना किसी प्रकार के अवरोध के, एक स्थान से दूसरे स्थान को चली जाती थी ॥ १०२ ॥

वर्षाणां मे महसं गतमधिकतरं वेद्यहं घातुवाद्

सिद्धो मे वाक्प्रपञ्चः करतलकलितं त्रैपुरं कामतत्त्वम् ।

उर्यां गर्वसर्पकृतसकलगुरुग्रामभक्त्या तयास्या-

मित्याग्न्यानेन नीताश्रयणतललिहृष्टकुराः कुक्कुरत्वम् ॥ १०३ ॥

वह लोगों से कहा करती थी—'मेरी आयु के कई सदस्र वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। मैं घातु (सोना, चाँदी आदि) बनाने की कला को आगर्हण कृ०, कुक्कुर प्रसस्ती स्तिद्ध है। सीतों, सोहों, वर कामतत्त्व मेरे हस्तगत है। गर्व के कारण सम्पूर्ण गुरुनभूहों की

भक्ति को कम करनेवाली उस स्त्री के द्वारा कथित उक्त बातों को सुनकर बड़े बड़े ठक्कुर (समाज के विशिष्ट एवं धनी व्यक्ति) भी, उसके चरणचुम्बन को करके ठक्कुरभाव को प्राप्त होते थे ॥ १०३ ॥

पूजामञ्जा भजन्ते जयनुतिषु नविंदिशु काम्बोजभोजाः

सेयाशुष्कास्तुरुष्काः परिचरणरसे किंच चीनाः प्रलीनाः ।

उत्कण्ठार्तास्त्रिगर्ताः परिचरणविधौ पीडयन्त्येव गौडा

दम्भारम्भेण तस्या विदधति कुमुमोत्सङ्गतामङ्गवद्भाः ॥ १०४ ॥

उसके, दम्भपूर्ण कार्य से पूजा के लिये तत्पर काम्बोज की प्रजा जयकार पूर्ण स्तुतियों के सम्दर्भ में उसके सामने नमन किया करती थी, तुरुष्क (पवन-जाति-विशेष) उसकी सरस सेवा किया करते थे; चीनदेश की जनता भी क्या उसकी परिचर्यारूपी रस में नहीं लीन रहा करती थी ? अर्थात् चीनी लोग भी उसकी सेवा में आनन्द समझते ही थे । त्रिगर्त (त्रिगर्त को 'जलधर' भी कहा जाता था । इसकी स्थिति दक्षिण-पश्चिम भारत में थी) की जनता भी उसके दर्शन एवं पूजन के लिये उत्कण्ठित रहा करती थी; गौड प्रदेश की प्रजा भी छष्ट सहन कर भी उसकी सेवा शुभ्रूपा करती थी, अह्न एवं वङ्ग देश के निवासी भी उसकी पूजा के लिये प्रसून लिये तत्पर रहा करते थे ॥ १०४ ॥

टिप्पणी—स्कन्दपुराण के अनुसार गौड देश की स्थिति बंगाल से प्रारम्भ कर ईरान की ओर बतलाई गई है :—“बंगदेशं बनारस्य भुवनेगावतां शिबे । गौडदेशः सगरुजातः” ॥ बंगाल में आधुनिक भागलपुर के आस पास की प्रदेश अंग कहा जाता था ।

भ्रान्त्या महीं जलनिधिप्रथितामनेषां

मायानिनीतिविदितामिदोन्नतिः मा ।

प्राप्ता पुनर्निजपदं तनुनीरयेषा

क्षीणोऽपि देहमिव कस्त्यजति म्वदेशम् ॥ १०५ ॥

सागर पर्यन्त अशेष पृथिवी का भ्रमण कर, माया (छल-कपट) और दुर्नैति के माध्यम से निरन्तर उन्नति करने वाली वह स्त्री शारीरिक बल और उत्साह के स्वन्पावशिष्ट हो जाने पर अपने मूल स्थान को लौट आती। क्षीण शरीर की भाँति, ऐसा कौन है जो अपने देश का परित्याग ही कर दे ॥ १०४ ॥

सा सर्वदेशपरिशीलितवेषभाषा

प्रभ्रष्टभूषणिसुताहमिति ब्रुवाणा ।

छिन्नाङ्गुलिर्दशनखण्डितनामिकाग्रा

लालाटनीलतिलकैर्विदिता ममैव ॥ १०६ ॥

नामिका 'कलामयी' से कह रहा है कि—स्वदेश लौटने पर सम्पूर्ण देश के वेष एवं भाषा से अभिन्न वह स्त्री 'मैं राज्यच्युत राजा की सड़की हूँ' इस प्रकार लोगों से कहती थी। उसकी अङ्गुलियाँ एवं दाँत छिन्न हो गये थे। नामिका भी खण्डित थी। उसके ललाट पर नीले नीले तिलक (तिल) पड़े हुये थे (वृद्धावस्था में लोगों के शरीर पर तिल पड़ जाते हैं)। उसका मैंने ही पहचाना ॥ १०६ ॥

सा चेतप्रकीर्णघनगेहनियानमर्षा

वृद्धाति लोभजननी जननीपदं ते ।

नन्कामिलोकमकलार्यसमृद्धिमेतां

यत्रादिना सुतनु हस्तगतामर्षि ॥ १०७ ॥

हे सुन्दरी ! सम्पूर्ण घर में फैले हुए घन के नजाने की रक्षा करने वाली सर्पिणीरूपा, लोभ की माता वह स्त्री यदि तुम्हारे जननी-पद को ग्रहण करे तब बिना प्रयत्न के ही कामीजनों की इस सम्पूर्ण घनसमृद्धि को अपने हस्तगत ही समझे ॥ १०७ ॥

तस्मात्तामहमेव वृद्धकृटिलां गत्वा स्वयं तत्कृतं

मर्वतां मकलार्यसार्धमरणेः सिद्ध्यै समम्यर्थये

किं किं वा कथयामि मैव जगती जानाति जेतुं धिया
नास्त्यन्या गतिरित्युदीर्य हितकृत्पूर्णं ययौ नापितः ॥१०८॥

इति श्रीव्यासदास्तापराज्यदेनेन्द्रनिनिवायां समयमातृकायां चरितोप-
न्यासो नाम द्वितीयः समयः ।

इन लिये मैं स्वयं जाकर सम्पूर्ण घन की प्राप्ति के उपाय की
निधि के लिये कष्ट के कारण इष्टित, सब कुछ जानने वाली, हत्ती
की से तुम्हारी नाता (रक्षाकर्त्री) नाता बनने के लिये प्रार्थना करती
हूँ । अधिक क्या क्या मैं कहूँ, इस जगती को बुद्धि से जीतने का
उपाय एकमात्र बड़ी जानती है । इसके अतिरिक्त कोई अन्य उपाय
नहीं है ।" ऐसा कहकर 'कलावती' का गुम चिन्तक एवं हितकर्ता
बह नापित अतिशीघ्र वहाँ से चला गया ॥ १०८ ॥

इस प्रकार सेनेन्द्र के द्वारा निमित्त समयमातृका का 'चरितोप-
न्यास' नामक द्वितीय समय पूरा हुआ ।

तृतीयः समयः 38185

अथ सर्पार्यजननीं जननीं वेश्यापिताम् ।

मित्रे स्वभावमलिनामानेतु गन्तुमुद्यते ॥ १ ॥

मंकोचक्लेद्यसंजातां शूरतामिव रागिणाम् ।

आमन्नश्रीवियोगानां स्यापग्लानिरजायत ॥ २ ॥

इसके अन्तर मित्र नापिन के, सम्पूर्ण अर्थों की जननी, स्वभाव-मलिन अर्थान् दुष्ट स्वभाववाली, युवती वेश्याओं की जननी (रक्षाकर्त्री) को लाने के हेतु जाने के लिये उद्यत होने पर, अतिनिष्ठ भविष्य में सम्पत्ति एवं शोभा के नारा को प्राप्त होने जाने कामुकों की सकोच एवं क्लेश से उन्नत शूरता की भाँति प्राप्ति में निद्रा की अलसता उत्पन्न हुई ॥ १-२ ॥

दैनैर्दिनघने क्षीणे स्वल्पशेषाग्रः परम् ।

अलग्नघन क्षणं रागां संभ्याघाम्नि दिनेग्रः ॥ ३ ॥

शनैः शनैः दिनरूपी घन के क्षीण होने पर बहुत कम अवशिष्ट अम्बर (क्षिररूपी वस्त्र अथवा मायकाल के समय सङ्कुचित आकाश) वाला रक्त रजः सूर्य क्षण भर के लिये सन्ध्या के तेज में आकाश से लटक गया ॥ ३ ॥

मंघ्रया श्विप्ररागिण्या निगन्तुः परितापवान् ।

नीलगगः नागन्दले चिक्षेप तपनस्तनुम् ॥ ४ ॥

अन्तिशब्दा से राग (अनुराग अथवा लालिमा) को धारण करने वाली मंघ्रा के द्वारा परित्यक्त अतः सन्तप्त एवं अनुरागविहीन सूर्य ने अपने शरीर को मन्द के लाल में डूब लिया ॥ ४ ॥

ततस्त्रिभिर्ममार्भारैर्गामाप्रनाघने ।

कृष्णागुल्मगेहूतधूपधूमोद्गमायितम् ॥ ५ ॥

तदनन्तर वेम्मानों के प्रसाधन के नमर अन्वकार-धनु के द्वारा
 दृष्टा जगु-धनु से उदत धूप के दहन के अनन्तर उदगत धूप की
 भौति जाकरा किश गरा अर्थात् दृष्टा जगु के धुपे की भौति अन्व-
 कार चारों ओर फैल गया ॥ ५ ॥

यामिनीयामिनीरीर्षदेशराशोपमं तमः ।

शीपचम्पकमालाभिर्विश्रान्तिनिरमं यया ॥ ६ ॥

निशादरी सुन्दरी के प्रदीप केराश की गोभावाला अन्वकार
 शीपकहरी चम्पक की मालाओं में अरुद्ध एव गभायमान हो रश
 या, अर्थात् अँधेरे के कारण घों में शीपक उल चुके थे ॥ ६ ॥

टिपणी—सुन्दरी त्रिशा अने बाढ में सुन्दरता से गोना के छिरे
 धार करत है। जो प्रकार किश सुन्दर न म' दन रास सुन्दरता
 से मने दनने अचछर स्त्री दन में लग लिश हो।

अथ स्वर्णेश्वरनितामापन्न्यकन्दच्युतम् ।

अद्वयत श्रुताद्यं कल्पपन्नमिवाभ्यरे ॥ ७ ॥

उसके बाद स्वर्ण की छानराओं के नापत्न्यकन्द (जब एक ही
 पुष्प में प्रेम करने वाली अनेक स्त्रियाँ उसके नाथ नदवान करने के
 लिये परस्पर लड़ती हैं व' उनका य' लड़ना 'नापत्न्यकन्द' गड में
 धमिद्वि किश जाता है।) के नमर तरे हुये न्यपत्र (हाथों के
 नाँव से निर्मित स्त्रियों के छवल पर धारा करने का जामूरा
 निगेष) की भौति जाकरा में अर्द्धवन्द दृष्टोपर हुआ ॥ ७ ॥

गन्तीरमणीकान्ते दिनान्ते तुहिनन्विपि ।

उदिते मुदिते लोके उभूव मदनो मयः ॥ ८ ॥

सन्ध्या ममर में निशा नादिका के नमर चन्द्रना के उदित में
 पर प्रनत न में मन्तोन्व मनाया गया ॥ ८ ॥

भुक्तां महत्तरग्नंपदमन्दरश्रीः

दृन्वा जनन्मरणमात्रदशावशेषाम् ।

चेदयेन काममनपेक्षितपक्षपाता

सिद्धं शशाङ्कनिभयामरणा चभूत् ॥ ९ ॥

अन्वार्थ के दिन के समय भगो गई सूर्यहरी सन्नति को मनुष्यों के द्वारा एकमात्र स्मरण की अवस्था को पहुँचा कर अर्थात् एकमात्र स्मरण की वस्तु बनाकर, किसी भी व्यक्ति के साथ पशुपात (प्रेम का लगाव) की अपेक्षा न रखने वाली वेरषा की भाँति शीघ्र ही शशङ्क-मण्डलरूपी आभरण को धारण कर लिया ॥ ६ ॥

टिप्पणी—स्वप्नदृश्य में ऐसा यह जाना है कि वे-यापें किसी भी व्यक्ति की सम्पत्ति को भोगकर उसके विनष्ट हो जाने पर किसी भा प्रकार के शोक-मोह का प्रदर्शन अथवा अनुभूति किए बिना क्षणिकी दूसर व्यक्ति में अनुरक्त जाती हैं। इसी प्रकार पूर्वभुक्त दिनभगिनी सम्पत्ति के नश्वर के अनन्तर अन्तर-धर्म-नादिका ने बिना एक क्षण के शोकानुभूति के शीघ्र ही चन्द्रगोपी को भोग में सलग्न हो गई।

ततः कर्तुं प्रवृत्तेषु वेदपानेदमाग्ररत्नम् ।

सिद्धेषु मनुजुन्धेषु निर्वापारं गतागतम् ॥ १० ॥

तदनन्तर वेश्याओं के आवागमनों के सम्मुख मधु के लोभी भ्रमरों की भाँति पिटो (कामुकों) के निःप्रयोजन गमनागमन करने में प्रवृत्त होने पर ॥ १० ॥

द्वाराप्रदत्तकर्णामु ग्रहणग्रहणेभ्यसा ।

वृद्धनीपु तृणापातेऽपुनमुखापु मुहुर्मुहुः ॥ ११ ॥

व्यक्तियों को पँसाने की इच्छा में गृह के प्रवेशद्वार पर कान लपेटे
वालों, एक वृष ने गिरने पर भी अर्थान् स्वल्प भी खसलडाइट होने
किंवा व्यक्ति के आगमन की आशंका से, कुट्टनियों के घारन्धार
की ओर इन्मग्न होने पर ॥ ११ ॥

दिनराष्ट्रनिर्मान्यमाल्यतान्भूतिनींभुवम् ।

संमृज्य मज्जशयानुवेदयाम्न्यप्रतीक्षया ॥ १२ ॥

वेश्याओं के, दिन के समय कामुकों के द्वारा धारण करके फेंकी गई मालाओं एवं ताम्बूल से प्रकीर्ण पृथिवी को स्वच्छ कर दूमेरे व्यक्तियों की प्रतीक्षा से, शय्या के सजाने पर ॥ १२ ॥

आस्तीर्यमाणखट्वान्तः किङ्किणीकाणसंजया ।

पारावतेषु विरुतैर्व्रजत्सु स्मरवन्दिताम् ॥ १३ ॥

बिछाई गई शय्या के मध्य में लेटी वेश्या के पैर में बँधे नूपुर के झंझार को सुनकर शब्द करने वाले व्रजतों के कामदेव के यशोगान को करने वाले वन्दिभाव को प्राप्त होने पर ॥ १३ ॥

टिप्पणी—व्रजतर नूपुर के शब्द को सुनकर बोलने लगते हैं। उनकी शैलना कामोत्तेजक माना गया है। अतः यहाँ के साहित्य में उन्हें कामदेव के यश को गाने वाले वन्दी जनों के रूप में चित्रित करने की प्रथा है।

गृहीतस्योपरि कथं गृह्यते ग्रहणं पुनः ।

पूर्वं किं नागतोऽमीति वदन्तीष्वपरासु च ॥ १४ ॥

प्रेम पात्र के ऊपर अर्थान् स्वरश के ऊपर पुनः किस प्रकार से प्रेम-पाश फँदकर उसे अत्यधिक पश में किया जाता है, इस बात के दर्शन के लिये कामुक-प्रेमी के आने पर 'क्या आप कभी पहले हाँ नहीं आते हैं?' ऐसा कुछ वेश्याओं के कहने पर ॥ १४ ॥

उदरायद्वयसनैर्जटाग्रन्थिनिपीडनम् ।

कुर्वाणैर्गारकलहे प्रारब्धे शठदेशिकः ॥ १५ ॥

उदर में घसन (फँटा) बाँधने वाले, जटाओं की गाँठ को कसकर बाँधने वाले, शठ, मठाधीशों के द्वारा अथवा दुष्ट स्वभाव वाले धानीय व्यक्तियों के द्वारा बारकलह (वेश्याओं के साथ किया जाने वाला कामोत्तेजक प्रेम कलह) प्रारम्भ करने पर ॥ १५ ॥

स्वयं मात्रा च युगपद् गृहीते ग्रहणद्वये ।

वारे प्राप्ते तृतीये च यान्तोष्वन्यास्वदर्शनम् ॥ १६ ॥

स्वयं भावा के द्वारा एक साथ दो व्यक्तियों से ग्रहण (निर्धारित

द्रव्य अर्थात् एडवांस) ले लेने के अनन्तर तीसरे व्यक्ति की पारी आने पर कुछ बेरयाओं के अष्ट हा जाने पर अर्थात् संभोगार्थ गृह के भीतर चली जाने पर ॥ १६ ॥

अनायाते परिचिते प्रत्याख्याते नवागते ।

उभयभ्रंशशोकेन सीदन्तीष्यपरासु च ॥ १७ ॥

परिचित व्यक्ति के न आने पर और नवागत व्यक्ति के लौटा देने पर; इस प्रकार उभय विधि से हुई हानि के शोक से कुछ बेरयाओं के शोक-सन्तप्त होने पर ॥ १७ ॥

टिप्पणी—कुछ बेरयायें प्रतिदिन आनेवाले कामुक व्यक्तियों का मार्ग देख रही थीं अतः नवागत व्यक्तियों को उन लोगों ने लौटा दिया। किन्तु कार्य-कारणवशा नियतकानुशों के भी न आने पर—इस प्रकार उभयथा हानि से—वे नवागतों के लौटा देने के विषय में पश्चान्नाप करने लगीं।

भुक्तोज्झितानामन्यासु पुनः प्राप्तार्थसंपदाम् ।

जननीं दुर्जनीकृत्य कुर्वाणासु प्रसादनम् ॥ १८ ॥

एक बार संभोग करके छोड़े गये और पुनः घन देकर संभोग की इच्छा करने वाले व्यक्तियों के लिये बनावटी रूप से माता को दुर्जन बनाकर कुछ बेरयाओं के उनका प्रसादन करने पर ॥ १८ ॥

टिप्पणी—एक बार संभोग के अनन्तर यदि कोई भी व्यक्ति पुनः घन देकर और संभोग की इच्छा व्यक्त करता है तो बेरयाएँ उसे अपने सौन्दर्य के प्रति अत्यधिक आश्चर्य जानकर माना से उस व्यक्ति के लिये आग्रह करती हैं कि एक बार इस व्यक्ति की और समय दे दिया जाय। किन्तु वह व्यक्ति और पैसा दे एतदर्थ माताएँ उसे दुबारा समय देने में आनाकानी करती हैं। बेरयाओं का माता से मनद देने के लिये आग्रह करना और मानाओं का समय न देना—ये दोनों ही बातें—बनावटी हुआ करती हैं।

यदि त्मांसा मुजननी न जानीयात्सुधामयम् ।

अमपिष्यदुपायो मे तत्कोऽर्मा प्राणधारणे ॥ १९ ॥

जब उन कामुकों को दुबारा समय मिल जाता या तब वे तरुणी

वेश्याएँ उनसे इस प्रकार कहा करती थीं—“सरल स्वभाववाली मेरी माता अमृत के नमान सरस एवं मधुर तुम को यदि पुनः समय न देती तो तुम्हारे प्रियोग में मरने वाली मेरे लिये प्राण-धारण करने का कौन सा उपाय हुआ होता ॥ १६ ॥

नित्यावहारकूपितं सर्वार्थैरुपकारिणम् ।

क्लृप्तुमारजयन्तीषु विदग्धासुतवैरिषु(?) ॥ २० ॥

विदग्ध वेश्याओं के; सब प्रकार से धन आदि देकर उपकार करने वाले, तथापि वेद्योंओं के द्वारा नित्य ही धन आदि के छीन लेने से कूपित, सरल व्यक्ति को प्रमत्त करने के लिये मनाने पर ॥ २० ॥

अन्यनाम्ना प्रविष्टानां कलहे कूटकामिनाम् ।

कुटनीषु रदन्तीषु घण्टारणरणोन्कटम् ॥ २१ ॥

कुटिल और मच्छन्न कामुकों के अन्य के नाम से गृह के भीतर प्रविष्ट होकर कलट करने पर घण्टा के ‘रण रण’ शब्द की भाँति कर्ण-कटु शब्दों में कुट्टनियों के बड़बड़ाने पर ॥ २१ ॥

टिप्पणी—प्रतिष्ठ एवं उच्च वेद्योंओं ने यहाँ लोगों के लिये समय विनष्ट रहता है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी अपनी पारी में ही गृह के भीतर जाता है। किन्तु कुछ ऐसे भी कुटिल एवं प्रन्डित कामुक होते हैं जो दूसरे का नाम बतलाकर अन्दर जाते हैं और वहाँ पहले से ही स्थित अथवा बाद में पहुँचने वाले चरार्थ व्यक्ति में उनका झगड़ा हो जाता है। इस बात को देख कर कुट्टनी क्लिप्ता बिगड़ने लगती हैं।

प्रमुमरुटकक्षीवक्षीणशुद्रामृते गृहे ।

नखीमसनमन्यासु यान्तीप्वादाय कामुकम् ॥ २२ ॥

भवन के फर्श अथवा चटाई पर मोटे हुए मत्त, शीण (रत्ति के वारण मिश्र) कामुकों के द्वारा घर के मर जाने पर नयागत कामुकों को लेकर अन्य वेद्योंओं के अपनी नखी के घर चली जाने पर ॥ २२ ॥

वालमार्जारिकाह्वानव्याजेनान्यासु वर्त्मनि ।

कटाक्षैः कलयन्तीषु दूरात्कामुरुमामिषम् ॥ २३ ॥

दूर से ही मार्ग में आते हुये, अपने सौन्दर्य से प्रभावित कामुक को देख कर बिल्ली के बच्चे को बुलाने के बहाने से अन्य वेश्याओं के अपने कटाक्ष से इशारा करने पर ॥ २३ ॥

एकः स्थितोऽन्तः प्राप्तोऽन्यः परस्परार्थव दुर्ग्रहः ।

किं करोमीति जननी पृच्छन्तीप्सपरासु च ॥ २४ ॥

बुद्ध वेश्याओं के द्वारा अपनी माता से इस प्रकार पूछने पर—
‘एक व्यक्त पर में है, दूसरा भी आ गया है और तीसरा भी आज के ही सभाग में लिये दुरामड कर रहा है। ऐसी अवस्था में मैं क्या कहूँ ?’ ॥ २४ ॥

निशा दीर्घा नवः कामी तनयेयं कनीयसी ।

व्यत्येति कालहाराय वृद्धावर्गे कथोद्यते ॥ २५ ॥

रात्रि बड़ी है, यह नयागत कामी भी युवक है और मेरी तनया अभी किशोरी अर्थात् ब्यभ है इस बात का ध्यान करके समय व्यतीत कर देने के लिये वृद्धाओं (बुढ़नियों) के कथा (समय व्यतीत करने वाली कहानी) कहने के लिये उद्यत होने पर ॥ २५ ॥

नाज्ञाताद् वृद्यते भार्ता चरन्ति म्लेच्छमायनाः ।

इत्यन्यासु वदन्तीषु शून्यशून्यासु लज्जया ॥ २६ ॥

“अज्ञात व्यक्तियों से पुरस्कार अथवा पारिश्रमिक (शुल्क) नहीं ग्रहण किया जाता, क्योंकि चारों ओर म्लेच्छों की सँति गाना गाने वाले अथवा म्लेच्छों का गाना गाने वाले अर्थात् म्लेच्छों की स्तुति करने वाले अथवा गाना गाने वाले म्लेच्छ धमण किया करते हैं” अपनी शून्य शून्या पर लज्जापूर्ण इस प्रकार बुद्ध वेश्याओं के कहने पर ॥ २६ ॥

आयाते वार्यमाणेऽपि निर्मानि क्षीणकामुके ।

व्याजकुक्षिशिरःशूलानन्दिनीषु परासु च ॥ २७ ॥

मान-सम्मानरहित अव-रोकने पर भी घन से शींग चातुक के अन्दर चने जाने पर हृषि एव शिर की उग्र पीड़ा के दग्धने अन्य वेश्याओं के क्रन्दन करने पर ॥ २३ ॥

सुगन्धकामुकमित्राणां स्वेच्छया व्यवहारिणाम् ।

प्रप्तुने स्थिरलामाय कुट्टनीमिगुणम्भवे ॥ २४ ॥

अपनी इच्छानुसार, निमज्जोच घन का व्यवहार करने वाले, मोले-भाने चातुक मित्रों के आने पर उनसे मार्शचानिक लाभ अथवा प्रचुर लाभ के लिये कुट्टनियों के उनका गुण गान प्रस्तुत करने पर ॥ २४ ॥

लज्जामहे वयं स्वल्पधनेनेति निमाषिनि ।

गग्यमाने दृश्यगुणे धूर्तः प्रथमकामिनाम् ॥ २५ ॥

वेश्या के वहाँ प्रथमागत कानो करक्ति के सम्मुख 'हे मामिनि ! हम घन की कमी के कारण लज्जित हो रहे हैं' ऐसा कह कर धूर्त के द्वारा दृश्यगुण द्रव्य के देने पर ॥ २५ ॥

टिप्पणी—वेश्याओं के यहाँ इतने ऐसे धूर्त लिपुट रहते हैं किन्तु धर्म नशील कानों के सामने उक्त प्रकार का नाटक रचना होता है । इन्से नवगत कानों का जाला है और अतुल्य एवं शान्त करने में वह न केवल अपने दृश्यगुण द्रव्य गिन कर चला जाता है ।

प्रवाममक्षेरधिकारिभृतोः स्थितावन्द्या ननरा ममेति ।

काचिद्वदन्ती विनने विगूय जग्राह भाटीं त्रिगुणां मन्दुडान् ॥ २६ ॥

'मेरी पुत्री प्रवाम में गये हुये अधिकारी (मन्त्री अथवा राज्य का कोई स्व अधिकारी) के पुत्र के लिये रोचकर (नभोग-विरतकर) रक्ती गयी है । फिर भी मैं आप का उमने सुगम करा दे रही हूँ' ऐसा कहती हुई कुट्टनी एकान्त में द्विगुण मन्दुद करक्ति से त्रिगुणित भाटी (नभोग-शुद्ध) ले रही थी ॥ २६ ॥

टिप्पणी—प्रचुर चय की यह सामान्य प्रथा है कि जब कोई वेश्या-पुत्री तरफ़ें होती या तब उसके साथ प्रथम-चर्चनी सङ्गठन मन्त्रित्व अथवा कोई

राज्य का उच्च कर्मचारी ही करता था। यह सौभाग्य एक मात्र राज्य से संबद्ध व्यक्तियों के लिये ही सुरक्षित रहता था, उनके प्रथम सम्भोग के अनन्तर ही वेग्याये सामान्य जनों के सम्भोग के लिये सुरक्षित होती थी।

अल्पं ममैतद्दुहितुर्न योग्यं न च क्षणोऽस्ति त्वमदृष्टपूर्वः ।

इति व्रजाणापि त्रितं पटान्ते गाढं गृहीत्वा न मुमोच काचित् ॥३१॥

कोई वृद्धनी इस प्रकार कहती थी —यह शुष्क अल्प है अतः तरुणी एष सुन्दरी मेरी पुत्री के योग्य नहीं है, आज समय नहीं है, तुम पहले पड़ल आये हो, मैंने तुम्हें इनके पूर्व नहीं देखा है। ऐसा कहती हुई भी वह वृद्धा कामुक के पछाञ्छल को कमकर पकड़े हुई थी। वह उसे छोड़ नहीं रही थी ॥ ३१ ॥

अमात्यपुत्रेण सुताद्य नीता क्षमस्व रात्रिं प्रणयान्ममैकाम् ।

उक्त्वेति काचिज्जरती चकार रिक्तस्य सक्तस्य च निप्रलम्भम् ॥३२॥

‘आज मेरी पुत्री अमात्यपुत्र के द्वारा ले जाई गयी है, अतः आप मेरे प्रेम के कारण आज एक रात क्षमा करें’ ऐसा कह कर किसी वृद्धा वृद्धनी ने रिक्त अर्थात् धन से रहित तथापि उस वेश्या पर आसक्त व्यक्ति को टग दिया ॥ ३२ ॥

दातव्यं न ददानि वारनिरहे टकोऽद्य लब्धस्थलः

क्रूरः सैन्यपतिः प्रयाति रिपुतां सयैव वागं विना ।

श्रुतिर्देवशृहात्कथं नु दिगिरे वारोज्झिते लभ्यते

वाटीपेटकगारतां गतवती प्रोयाच काचिन्मसीम् ॥ ३३ ॥

“आज स्वान प्राप्त करने वाला ‘टक’ अपने दिन अथवा पारी (क्रम) के न रहने पर मेरे दातव्य (देय) को नहीं दे रहा है। अपने दिन अथवा क्रम के न रहने पर भी, समय न मिलने के कारण, क्रूर-सेनापति शीघ्र ही रिपुता को प्राप्त ही रहा है अर्थात् क्रुद्ध होकर वैरमात्र मानने लगा है। वार के व्यनत हो जाने पर देवगृह (मन्दिर) से किम भौति श्रुति (प्रति दिन सायकान के समय नृत्य-गान करने

वाली वेश्याओं के लिये देव धन) प्राप्त होगी ?' इन प्रकार की बातों को उद्यान-गृह के किनारे खड़ी किसी वेश्या ने अपनी सखी से कहा ॥३३॥

अन्यास्ताः सखि कृटपाशनिचर्यैराकृष्टमुग्धश्रियः

कुर्मः जि उयमेव वञ्चनकलां ज्ञान्या न जानीमहे ।

सद्भावे ननतं म्यभाग्रिमृषः मर्माभिग्रह्नी जनो

वाक्यैः साचिदिति प्रकाशमरुोन्मत्तार्जवापजनम् ॥३४॥

कपटजाल का विस्तार करके भाने भाले व्यक्तियों की धन सम्पत्ति को लूट लेने वाली भी अन्य कुछ वेश्यायें अपनी अपनी सखियों से कहती हैं "हे मर्दि ! क्या किया जाय । हम लोग तो प्रकृष्टा वञ्चन की कला अर्थात् दूसरे को ठगने का तरीका जानती ही नहीं हैं । घबनों से सद्भाव के निरन्तर प्रदर्शित करने पर भी सब पर शङ्का करने वाला व्यक्ति स्वभावतः विमुख हो जाता है" । इस प्रकार निर्मा वेश्या में अनुरक्त अध्या फासुक व्यक्तियों की मरलता (सिपाई) का प्रतिपेक्ष किया ॥ ३४ ॥

... सरल्य मा रसपती नीना क्षणेन क्षपा

पापेन क्षपितं दिनं निशि तथा शय्याप्रहारः कृतः ।

इत्युद्वेगपरिग्रहग्लपितधीः पृष्टः महार्ममिदं-

वर्षान्ते कटुकट्टनीकृटिलतामह्विष्टकृतां मिदः ॥ ३५ ॥

हमी करनेमाले अग्रा हंसमुख शितों के द्वारा वेश्या के साथ सम्भोग की वार्ता के पूछे जाने पर हृदयस्थित उद्वेग के कारण मलिन मुद्रित-वाला कोई मिद सामान्य क्षल वपट से परिपूर्ण, फर्कश स्वभाववाली कुट्टनी की कुटिलता का वर्णन इस प्रकार किया:—पाप। उत्तर (नाव-गाना आदि मने रहन) के द्वारा सम्पूर्ण मरस रात्रि व्यतीत कर दी गई । दिन भी इसी प्रकार समाप्त हो गया । आत की रात में भी वह (वेश्या) शय्या पर गई ही नहीं" इन प्रकार बाह्य क्रिया क्लानों में कैसा कर मुझे रतिज्ज्व मुस्रानुभूति से वञ्चित हो रक्खा गया ॥३५॥

नास्मद्गोहप्रवेशः सगुणजनकथाकोलिमात्रोपचारै-

र्व्यापाराम्भमारप्रवसदवसरे वासरे कामुकानाम् ।

वृत्तिर्घृत्तानुरोधात्कथमपि विदिताद् गृह्यते यामवत्या-

मिन्युच्चैः काचिद्दे बहुगनगणिकावर्गमवोपशान्त्यै ॥ ३६ ॥

‘सगुणजनो—गुणशाली व्यक्तियों—की सरस कथाटेलिमात्र के चपन्यास (प्रस्ताव) पूर्वक सम्मोग-झीडा से रक्षित अवसर वाले दिन के समय हमारे घर में कामुक व्यक्तियों का प्रवेश नहीं होता । रात्रि में कथमपि जाने गये चरित्र के प्रसङ्ग से कामुको का व्यवहार भली भाँति जाना जाता है ।’ इस प्रकार ऊँचे स्तर में किसी वेश्या ने बहुत से व्यक्तियों के साथ सम्पर्क करनेवाली गणिमाओं के मान मर्दन के लिये कहा ॥ ३६ ॥

बुरु तरलिके हारं कण्ठे गृहाण मनोहरे

चलपयुगलं लीले लोलां विलोम्य मेखलाम् ।

भज मलयजं चित्रे रात्रिः प्रयाति कठोरता-

मिति चतुरताचार्यस्तामां बभूव मखीजनः ॥ ३७ ॥

इति श्रीव्यासदासापराध्यजेमेन्द्रनिर्मितायां समयमावृत्तायां प्रदोषवेश्या-
लापवर्णनं तृतीयः समयः ।

“हे तरलिके ! अपने कण्ठ में हार धारण करो, हे मनोहरे ! कटक-
युगल को धारण करो । हे लीला करनेवाली स्त्रि ! चंचल अपनी
मेखला को देखो । हे विचित्र स्वभाववाली ! मलयज चन्दन को धारण
करो । रात्रि कठोरता (प्रौढता एवं सघनता) को प्राप्त हो रही है ।”
इस प्रकार कुछ युवतियों की सखियाँ चतुरता में उनकी आचार्य हो
गई अर्थात् आचार्य के समान उन्हें शिक्षा देने लगी ॥ ३७ ॥

मेन्द्र के द्वारा निमित्त समयमावृत्ता में प्रदोष के समय वेश्याओं
के आलाप के वर्णन पूर्वक तृतीय अध्याय समाप्त हुआ ।

चतुर्थः समयः

अम्मिन्नमरे धूर्तवार्तालीना सुकुट्टनी ।

नापितारूपेण तमना रजनीव महायया ॥ १ ॥

मन्या की इसी बेला मे धूर्त लोगों की वार्ता में तल्लीन अर्थात् बड़ी ही तन्मयता के साथ धूर्तों की वार्ता करती हुई एक प्रवीण कुट्टनी, अन्यकार के साथ शत्रि की भाँति, नापित के साथ आई ॥ १ ॥

अस्थियन्त्रशिरातन्त्री लीनान्त्रोदरकुचिका ।

शुष्करूपकरङ्काङ्कावृतेष कटपूतना ॥ २ ॥

उमके शरीर में हड्डियाँ और नश मात्र ही अवशिष्ट थीं। उमका पेट एतन्म धँसा हुआ था। वह गोदी में खोपड़ी लिये हुये ब्रह्मन्दादित प्रेतात्मा की भाँति प्रसन्न होती थी ॥ २ ॥

यहन्ती सुबहुच्छिद्रं शरीरं चर्मगन्धनम् ।

अन्तर्गतजगद्वयाजशिक्षाग्रकुनिपञ्जरम् ॥ ३ ॥

यहूत से छिद्रों से सबलित चर्म के बन्धनवाले, शिक्षा के लिये गृहीत अन्तर्गत (हस्तगत) जगन् रूपी पक्षी के पञ्जर-रूप शरीर को धारण किये हुए थी ॥ ३ ॥

मर्वम्वग्रहणेनापि लम्बमानमुखी मदा ।

तुलेगङ्गमहस्राङ्का त्रैलोक्यतुलने कठेः ॥ ४ ॥

सब कुछ ग्रहण करने पर भी और कुछ लेने के लिये वह सर्वदा मुख फैलाये रहती थी अर्थात् मन्त्रोप नाम की कोई भी चीज उमके पास न थी। वह त्रिलोकी को नापने के लिये अङ्ग (मध्य) में सन्त्रो अङ्ग (गम्मार स्थल) वालो कठि को तुला की भाँति थी ॥ ४ ॥

ममा समन्ने पापे मपापाधमगाधमे ।

धात्रा कृत्रिमरागस्य स्वरमालैव निर्मिता ॥ ५ ॥

समान धनवाने पापियों एवं अधम व्यक्तियों में वह समान थी। विधाता ने उसे कृत्रिम राग (स्वर, पक्षान्तर में प्रेम) की 'स्वरमाला' के समान बनाया था ॥ ५ ॥

मुस्पष्टदृष्टदीर्घोदशना भीषणाकृतिः ।

प्रसवक्रकोपेन संस्थितास्थिरता शुनी ॥ ६ ॥

उसके दीर्घ एष भयङ्कर दौत इतने बड़े यड़े थे कि वे बहुत ही स्पष्ट ढंग से बाहर दिखलाई पड़ते थे। उसकी आकृति भयङ्कर थी। उसे देखने से मादम पड़ता था मानो प्रसव के भयङ्कर कोप से अर्थात् प्रसव की तीन वेदना के कारण कृतिया ने स्थिरता को धारण कर लिया हो ॥ ६ ॥

उलूकवदना काकग्रीवा मार्जारलोचना ।

निर्मिताप्राणिनामङ्गैरिव नित्यविरोधिनाम् ॥ ७ ॥

उसका मुख उलूक के मुख की भांति था। उसकी ग्रीवा काक के गर्दन के समान थी। उसके नेत्र बिल्ली के लोचन की भांति थे। इस प्रकार वह सर्वदा परस्पर स्वभावतः विरोध करने वाले प्राणियों के अङ्गों से बनी हुई प्रतीत होती थी ॥ ७ ॥

वैश्यामनैरुपालिन्या यया रागमहाव्रते ।

कृता कामुकलोकस्य सद्वाङ्मयशरणा तनुः ॥ ८ ॥

वैश्यामनू की अद्वितीय रक्षक जिस वृद्धाश्रम के द्वारा, रागरूपी महाव्रत में, कामुक व्यक्तियों के समुदाय एकमात्र सद्वा की शरण लेने के लिये बाह्य कर दिये गये अर्थात् उस स्त्री ने न जाने कितने कामुक व्यक्तियों को अतिसंभोग के माध्यम से चिररोगी बना कर सट्टिया की शरण लेने के लिये बाह्य कर दिया ॥ ८ ॥

सक्ताशुपातजननी तां तिलोम्य कलायती ।

अभिचारदुतस्याग्नेः काली धूमशिरामिव ॥ ९ ॥

ममंभ्रमोत्थिता तस्याः कृत्वा चरणचन्दनम् ।

दत्त्वा निजामनं चक्रे स्तुतिं पूजापुरःसरम् ॥ १० ॥

अनुरक्त व्यक्तियों के अध्रुपात का कारण, अभिचार-हृदनीयाग्नि की काली घूम शिला की भाँति उस वृद्धा को देखकर 'कलावती' ने बड़े वेग और आदर से उठकर उनका चरण-चन्दन करके अपने आसन पर बैठाकर पूजापूर्वक अर्घ्यां सरकारपूर्वक उनकी स्तुति (प्रशंसा) की ॥ १-१० ॥

वैश्योपदेशमिषये चतुराननत्वा-

न्मायाप्रपञ्चनिचयेन जनार्दनत्वात् ।

रिक्तप्रमत्तकलहैरतिभैरवत्वात्-

मर्गस्थितिक्षयविधातृगुणा त्वमेव ॥ ११ ॥

कलावती ने उसकी स्तुति करते हुये कहा—बेरयाओं को उपदेश देने के विषय में चतुर्मुख भाग को धारण करने के कारण (अर्थात् बेरयाओं को उपदेश देने के लिये मानों तुम्हारे पास चार मुख हो जाते हैं); मायाप्रपञ्च (द्वल, कष्ट आदि) के समुद्र का अवलम्बन करने के कारण विष्णुभाव धारण करने से (अर्थात् तुम विष्णु की भाँति माया-प्रपञ्च का निस्तार करती हो); निर्धन होने पर मो बेरयाओं पर अनुरक्त होने वाले व्यक्तियों के साथ कलह करने के कारण भैरव का अवलम्बन करने से तुम ही नृष्टि, स्थिति एवं विनाश करने वाले तीनों-सत्त्व, रज एवं तन-गुण हो अथवा नृष्टि, स्थिति तथा विनाश करने वाली प्रवृत्ति हो ॥ ११ ॥

उद्भिन्नयौवनमनोरहस्यशोभा-

मंभावितामिनःभोगमनोमवानाम् ।

एणीदृशां त्वदुपदेशमिजिज्ञानां

मानर्भवन्ति नहि नाम ममीहितार्थाः ॥ १२ ॥

हे मात ! तुम्हारे उपदेश से विवर्णित, अङ्कुषयमाण नयीन धीयन के कारण मनाहारिणी स्वरूप की सुन्दरता से संकुच है अभिनय समग के लिये कामदेव निनमे, ऐसी सुन्दरिया ने मनोरम की निद्रि नहीं ले पाती ॥ १२ ॥

तस्माद्धृजस्य परिकल्पितपुत्रिका मा

भक्तामनन्यशरणां शरणं प्रपन्नाम् ।

आत्मार्पणप्रणयिनां नन्दशनेऽपि

जात्यैव पेशलधियः सदया भवन्ति ॥ १३ ॥

इम लिये अपनी भक्त, अन्य सहायका से रहित, शरण में गिरी हुई, मुक्त हो तुम अपनी परिकल्पित पुत्री के रूप में स्वीकार कर लो । विशाल बुद्धिमान व्यक्ति प्रथम मात्रात्कार में भी आत्मसमर्पण करने वाले व्यक्तियों के ऊपर प्रकृत्या दयालु हुआ करते ही हैं ॥ १३ ॥

इत्यर्थिना कृतावन्याः ग्रन्थामन्नमुग्रस्थितिः ।

मनुष्यामिषरङ्गाली रङ्गाली तामभाषत ॥ १४ ॥

कलायती के द्वारा इस प्रकार प्राप्त, निरुद्ध भविष्य में मुन पूर्वक निराम करनेवाली, अस्तिगच्छरमात्राशिशु (मास से हीन होने से केवली हड्डिदार शरीरवाली) रङ्गाली ने उनसे (कलायती से) कहा ॥ १४ ॥

मनान्तहृदयस्नेहा निःशूलप्रमरोद्धरा ।

गर्भभारं विना पुत्रि त्वं मुनाभिमतानम ॥ १५ ॥

हे पुत्रि ! मेरे हृदय के स्नेह से धारण करने वाली (पुत्री भी मेना के ही समान दयालु अन्न निर्भय होती है) जयरा मेरे लिये अपने हृदय में स्नेह करनेवाली (पुत्री नाता के लिये अपने हृदय में स्नेह धारण करती है) विना प्रभव के वेदना के भी समुद्र में दुधि में धारण करके विना भी तुम मेरी पुत्री अभिमत हो जयरा मुक्त में सञ्जात न उन्नत होने पर भी तुम मुझ पुत्री के रूप में मान्य हो ॥ १५ ॥

कङ्केन जन्ममुद्भवा त्वदर्थमहमर्थिता ।

स्यूतेयं मे विटच्छिन्ना नासा येन पुनः पुनः ॥ १६ ॥

यह कङ्क (नापित) मेरी जन्मजात मित्र है । विटों के द्वारा काटी गई मेरी नाक को बारम्बार जोड़नेवाले इस कङ्क ने तुम्हारी भाग बनने के लिये मुझ से प्रार्थना की है ॥ १६ ॥

पात्रं मनुष्यदेगस्य त्वमेव त्रिदशोचिता ।

मद्भित्तिलिखितं चित्रं चित्रतामेति नेत्रयोः ॥ १७ ॥

त्रिदशोचिता—देवताओं के योग्य अर्थात् अनिसुन्दरी अथवा एक रात्रि में तीस व्यक्तियों के संभोगयोग्य यौवनवाली एकमात्र तुम ही मेरे उपदेश के लिये योग्य पात्र हो; क्योंकि सुन्दर-समतल एवं चिकनी-भित्तिपर लिखा गया हो चित्र नेत्रों के लिये आकर्षक होता है । मेरे समान गुरु की एकमात्र तुम्हीं योग्य शिष्या होने लायक हो ॥ १७ ॥

श्रूयतां प्रथमं पुत्रि भृत्यं यत्कथयाम्यहम् ।

कलाकोपं तु कालेन नित्याभ्यासादवाप्स्यसि ॥ १८ ॥

हे पुत्रि ! मैं तुम्हारे कल्याण के लिये कह रही हूँ । सर्वप्रथम तुम इस बात को सुनो—‘तुम प्रतिदिन अभ्यास करके ही समय आने पर हाव-भावादि कला कंप को प्राप्त करोगी ॥ १८ ॥

न कुलेन न शीलेन न रूपेण न विद्याया ।

जीविताम्पथिर्न बुद्धिलभ्यं धनमवाप्स्यते ॥ १९ ॥

प्राण से भी अधिक प्रिय धन न तो कुल के कारण प्राप्त होता है, न तो शील से प्राप्त होता है, न तो रूप और विद्या से ही । यह एकमात्र बुद्धि से ही प्राप्त किया जाता है ॥ १९ ॥

प्रायेण जगति प्रप्ता नाना.....स्ति कस्यचित् ।

इयतीं जगतीं वेद्यि पूर्णामूर्णायुभिर्जडः ॥ २० ॥

इस संसार में प्रायः किसी की ही बुद्धि नाना विषयों के परिशीलन

में प्रवीण हुआ करती हैं। जड़प्राय ऊर्णायु (मक्का) यही सोचता है कि "मैं इतनी सम्पूर्ण जगती को जानता हूँ" ॥ २० ॥

अज्ञातकालोचित-कर्मयोगा रोगा इवाहर्निशपच्यमानाः ।

जगत्त्रये देवमनुष्यनागाः प्रज्ञादरिद्राः खलु सर्व एव ॥ २१ ॥

इस त्रिजगती में प्रज्ञाविहीन देव, मनुष्य एवं नाग आदि सभी अज्ञात अर्थात् अनुचित काल में कार्य करने के कारण दिन-रात रोग की भाँति पकते रहते हैं ॥ २१ ॥

ज्येष्ठेन तावत्परमेष्ठिर्नैव विचारश्चान्येन कृतं किमेतत् ।

यत्कामिनीपीनपयोधराणां विद्युद्विलोला किल यौवनश्रीः ॥ २२ ॥

सबसे प्रथम तो यही है कि—प्राणियों में सर्वप्रथम उत्पन्न होने वाले, विचारशून्य विधाता के द्वारा श्री यक्ष क्या कर डाला गया, जो कि उन्होंने कामिनी जनों के स्थूल पयोधरों की यौवन-श्री को चिरस्थायी न बनाकर विद्युत् की भाँति चपल अर्थात् क्षणिक बनाया है ॥ २२ ॥

का नाम बुद्धिहीनस्य विधेरस्ति विदग्धता ।

कूष्माण्डानां न यश्चक्रे तैलमूर्णां च दन्तिनाम् ॥ २३ ॥

बुद्धिहीन विधाता की भला कौन सी विदग्धता मानी जाय, जब कि उन्होंने कूष्माण्ड (कोंहड़ा) में तेल नहीं बनाया और न तो हाथिओं के शरीर में रोम ही उत्पन्न किया ॥ २३ ॥

दिप्यन्ती—कोंहड़ा की छोड़कर कति लघु तिल में तेल उत्पन्न करना विरालदाय हाथी की छोड़कर लघुदाय मेंड़ के शरीर में रोम (ऊन) उत्पन्न करना विधाता की बुद्धि विहीनता है ।

रत्नायिना जलनिधौ मधुमूदनेन

क्लेशः किलाद्रिवलनप्रभवोऽनुभूतः ।

किं सैव पूर्वमपिलार्यविलुण्ठनाय

कान्ताकृतिः कपटकाममयी न सृष्टा ॥ २४ ॥

रत्न को चाहने वाले मधुमूदन भगवान् विष्णु ने सागर में मयार्णव मृत मन्दराचल के घुमाने से निश्चय ही उत्पन्न क्लेश का अनुभव किया

अर्थान् कष्ट उठाया, किन्तु उन्होंने सागरमन्थन के पूर्व सम्पूर्ण अर्थों (प्रयोजनों एवं आनन्दों) के विलुण्ठन (छूटने) के लिये कपट एवं काममयी अधवा कपट-नाम से परिच्युत कान्ता की आकृति का ही निर्माण क्यों नहीं किया ? जिससे सारा आनन्द अनायास ही प्राप्त किया जा सकता था ॥ २४ ॥

निद्रा महीभारपरिग्रहश्च श्रीमंश्रयत्वं परयाचनं च ।

अत्युन्नतत्वं गुणहीनता च किं युक्तमेतत्पुरुषोत्तमस्य ॥ २५ ॥

शयन (आपाद शुक्ल एकादशी से कार्तिक शुक्ल एकादशीपर्यन्त लगातार चार महीने); पृथ्वी के भार का प्रदण; लक्ष्मी का आश्रयन, दूसरे से याचना करना (वामनरूपवारी विष्णु ने बलि से माँगा था) अन्यधिक उग्रजता (विराटरूप से महानता) अथवा अन्यधिक श्रेष्ठता; गुणहीनता, क्या ये बातें पुरुषोत्तम भगवान् के योग्य हैं ? ॥ २५ ॥

कृशः शशी गणा नम्रा भार्या वन्द्यार्धहारिणी ।

ग्रंभोर्धनपतिश्रीतिर्न मित्रः क्षोपयुज्यते ॥ २६ ॥

भगवान् शङ्कर के मस्तक पर वर्तमान चन्द्रमा कृश है, उनके गण नाना रङ्ग हैं आर भार्या भी अर्धरत्नहारिणी है। ऐसी अवस्था में नहीं जानना कि कुबेर के माघ उनके मैत्री का क्या उपयोग है ? ॥ २६ ॥

भस्माङ्गः प्रकटं विमर्ति ललनां योऽङ्गे म किं युक्तक-

निमङ्गः सततं गणेषु रमते यः किं न सत्यवतः ।

यः सक्तः परमेश्वरोऽपि घृणमृदुर्गे म किं नीतिमान्-

गोप्यां यः कुटिलांकलां स्फुटनया घत्ते स किं धीघनः ॥ २७ ॥

अपने अङ्गों में भस्म पेंतने वाले, धर्मवारी अथवा बाह्यरूप वृत्त का स्वीकार करनेवाले भगवान् परमेश्वर स्फुट रूप से जा अपने अङ्ग (अर्द्धाङ्ग) में लक्ष्मी का धारण कर लें, क्या उनका यह कार्य युक्ति-युक्त है अर्थात् क्या उनका यह कार्य समुचित है ? निमङ्ग हो करके भी नरदा गणों में रमण करनेवाले शिव, को सत्यवतता क्या

निर्गोहित हो रही है ? ऐसी अवस्था में क्या वे वस्तुतः सत्यमत कहे जाने के योग्य हैं ? निःसङ्ग होकर भी अपने वर्ग में आसक्त रहनेवाले भगवान् शङ्कर क्या नीतिमान् कहे जा सकते हैं ? जो भगवान् श्रीकृष्ण गोपी के साथ प्रन्दरूप से कुटिल कला को धारण करते हैं, क्या वे सभ्यार्थ बुद्धि के धनी माने जा सकते हैं ॥ २७ ॥

किं कामिनीप्रणयिना दिननायकेन
मंशातितं भ्रमकृता कृतिना स्मृतैः ।

अर्थेन किं न विहिताभिमुखं मृगाश्रीं
चित्तेन तीक्ष्णतरमप्यगला सहेत ॥ २८ ॥

स्त्रियों के प्रणयी, कृतार्थ, मर्जदा भ्रमणशील सूर्य के द्वारा अपना तेज क्यों समाप्त कर दिया जाता है ? क्या धन के द्वारा मृगानयनी श्री अनुमूल नहीं की जाती ? धन एक ऐसी वस्तु है जिससे स्त्रियों तीक्ष्ण से भी तीक्ष्ण व्यक्ति अथवा तेज को सज्जन कर लेती हैं ॥ २८ ॥

चन्द्रस्यैश्वर्यसंयया कृतनोः क्षण्यं न निर्मूलितं

मानो भूमिं जडः स्थितः कथमिह प्राप्नोति संपूर्णताम् ।
पृथ्वर्यो यदि किं करोति चरणांपान्ते न तस्याम्पदं
हन्त्येव स्वममीहितं गुणमदादुर्चः स्थितः सेरकः ॥ २९ ॥

ईश्वर शिव की सेवा करने पर भी क्रशरीर चन्द्रमा (कला-रमक चन्द्रमा) की क्षीणता विनष्ट नहीं हुई । स्वाभिमानो, मूर्ख चन्द्र भना शिव के मस्तक पर स्थित होकर कैसे पूर्णता को प्राप्त कर सकता है ? अपनी वृद्धि को चाहनेवाला सेरक यदि स्वामी के चरण के तनीप अपनी स्थिति नहीं बनाता है और अपने गुण के मद में ऊँचे हो स्थित रहता है तो वह अपने ही कल्याण का विनाश करता है ॥ २९ ॥

यानः प्रनारयितुमीश्वरमङ्गनायां

मारः पुरा किमिति कार्मुक्याणयाणिः ।

नाग्रे ततान वनितागुणवर्णनानां

यत्मो तेन नियतं विननाश मूर्खः ॥ ३० ॥

पूर्वकाल में ईश्वर भगवान् शङ्कर को स्त्री में आकृष्ट कर अनुरक्त करने के लिये कामदेव ने उनके सामने वनिताओं के गुणों के वर्णनों का सौख्य न फैला कर अर्थात् कामिनियों के सौन्दर्यादि की प्रशंसा न करके अपने हाथों में घनुष एवं बाण को धारण कर उनके समक्ष क्यों गमन किया ? निश्चय ही वह अपने इस अविचारित कार्य के कारण ही विनष्ट हो गया ॥ ३० ॥

रक्तोऽप्यशोकविटपी परपुष्टबन्धोः

ग्रामोति यम्य विमवे चरणप्रहारम् ।

तस्मै समृद्धिमचिवैर्मधुपनिपत्य

धृतैर्निपीतमधवे मधवे नमोऽस्तु ॥ ३१ ॥

लाल (अनुरक्त) भी अशोक वृक्ष जिस दूमे से पत्ते हुए केकिल के मित्र वसन्त का वैमत्र आने पर चरणों का प्रहार महा करता है (सुन्दरियों के, पादाघात से अशोक पुष्पित होता है—कवि समय प्रसिद्धि) तथा नम्पत्ति के समय निरस्तृत हो हो कर भी घुमकर मत्ता छटनेवाले मधुपों (भौरों, पीनेवालों) से जिसका मधु (पराग, सुरा) पिना जा चुका है उस वसन्त को नमस्कार ! ॥ ३१ ॥

स्याम्यं मर्वजगत्सु दिव्यमुनयस्तत्रोचिता मन्त्रिणो

राष्ट्रं स्वर्गमही महामणिगुरुः कोषः सुधाम्भोनिधिः ।

दुर्गं मेरुशिरः स्वर्गमन्यममराः श्रीमान्पुरारिः सुहृत्

मा बुद्धिर्विबुधाधिपस्य तु यया व्याप्तं भगार्द्धवपुः ॥ ३२ ॥

देवराज इन्द्र का सर्व जगत् पर आधिपत्य है, उसमें देवमुनि उनके योग्य मन्त्री हैं। स्वर्ग की पृथिवी उनका राष्ट्र है। उनका कोष महामणि (चिन्तामणि) के कारण समृद्ध है। अमृत का उनका सागर है। मेरु शर्वत की सीढ़ी ही उनका दुर्ग है। देवमण्डल ही

उनकी सेना है और श्रीमान् विष्णु ही माश्रान् उनके मित्र हैं। किन्तु उनकी ही यह बुद्धि है जिसके कारण उनका शरीर भग के चिह्नों से परिब्याप्त हो गया है ॥ ३२ ॥

सुन्धस्पाफलकालहृत्कटुकक्रोधस्य निस्तेजसः

मर्माक्रान्तिनिपीडितस्य जलधेर्दातुं प्रवृत्तस्य ते ।

मंल्यातीतसमस्तरत्नसत्वेर्मूर्खाः क्रिमेतावता

मोहादेग्गजाधपादपमुरामात्रेण तुष्टाः सुराः ॥ ३३ ॥

लेंभी (क्योंकि सब कुछ प्राप्त कर लेने पर भी समुद्र सन्तुष्ट नहीं होता), मन्थन के परिणामस्वरूप निर्गत कालहृत्कटुक क्रोधमाने, निस्तेज, तथा देवताओं एवं देवों की आक्रान्ति से नितरा पीडित भवः देने में तत्पर, अमल्य समस्त रत्नों के निवासभूत मागर के ऊपर मूर्ख देवलोक एक गज (गेरान), एक अश्व (उन्चे-धवा), एक वृक्ष (कम्पक) एवं सुरामात्र से ही—अतिस्वल्प वस्तुओं से ही—मोहग्र-अज्ञानग्र-क्यों तुष्ट हो गये ? अर्थात् ये वस्तुयें तो अतिस्वल्प थीं उन्हें और कुछ निश्चालना चाहिये था। इतने मात्र से सन्तुष्ट होना उनकी मूर्खता की निशानी है ॥ ३३ ॥

रामेण हेमहरिणाहणोन्मुकेन

वृष्टाक्षनेलिमरणेन युधिष्ठिरेण ।

ईर्ष्यात्पा द्विजरूपा जनमेजयेन

दत्तः परं मनुजपुत्रमनि माङ्ग्यसेतुः ॥ ३४ ॥

सुवर्ण के हरिण को पकड़ने के लिये उच्छिष्ट रामचन्द्र के द्वारा कपटगुप्त की झोला-पट्टनि का अनुसरण करने वाले धर्मराज युधिष्ठिर के द्वारा एवं ईर्ष्याजन्य क्रोध के कारण ब्राह्मण पर क्रुद्ध होनेवाले जनमेजय के द्वारा मानव-मार्ग में अर्थात् मानव के इतिहास में एकमात्र अज्ञानता का मनु ही बनाया गया है अर्थात् इन लोगों के उत्तम कार्य अज्ञानता से पूर्ण ही रहे ॥ ३४ ॥

नागैस्तार्क्ष्यसमर्पितं तदमृतं यत्तत्रमैर्दुर्लभं

नो पीतं न विलोकितं न पिहितं मोहात्परं हारितम् ।

तस्माच्चास्ति जगत्त्रयेऽपि विमलः प्रज्ञाकणः कस्यचित्-

सर्वः प्राक्तनजन्मकर्म वशादर्थोद्यमे धावति ॥ ३५ ॥

यत्र करने पर भी दुष्प्राप्य अमृत को नागों ने जो कि तार्क्ष्य को समर्पित कर दिया । उसे उन लोगों ने न तो पिया, न देखा और न छूँकर रक्खा ही । वे उसे अज्ञानतावश गो बैठे । इससे यही निश्चित होता है कि इस सगल त्रिजगती में किसी के पास भी विमल प्रज्ञा का एक भी कण नहीं है । सभी अपने पूर्वजन्म के जन्य-कर्मवश धनसिद्धि के कारणों में दौड़ते हैं ॥ ३५ ॥

एवं जडेषु लोकेषु स्त्रीषु मुग्धाम् का कथा ।

बुद्धिहीनप्रसादेन जीनामः केवलं वयम् ॥ ३६ ॥

इस प्रकार सम्पूर्ण लोक के ही जड अर्थी प्रज्ञाविहीन सिद्ध होने पर बेचारी भोली-भाली स्त्रियों की क्या कथा की जाय ? हम लोग केवल बुद्धिहीनों के प्रसाद से ही जीती हैं ॥ ३६ ॥

मुग्धः प्रत्ययमायाति प्रत्यक्षेऽप्यन्यथा कृते ।

मायाप्रपञ्चमारब्ध वेद्यानां विभवोद्भवः ॥ ३७ ॥

प्रत्यक्ष में अन्यथा करने पर भी भोले-भाले व्यक्ति विश्वास कर लेते हैं । माया एवं प्रपञ्च से ही वेद्याओं को सम्पत्ति की प्राप्ति होती है ॥ ३७ ॥

पुरा मठरकार्यस्य मया पाण्डो द्विजन्मनः ।

ताम्बूलकल्ककलितं पृथिवितं हास्यलीलया ॥ ३८ ॥

बहुत पढ़ने की बात है—'मठरक' नामक आह्वण के हाथ पर मैंने हँसी-मजाक में चर्चित किये गये पान के लबाब को थूँक दिया था ॥ ३८ ॥

मुग्धस्ततोऽवमानेन सोऽभिजातोऽभिमानवान् ।

दत्तसंसदि लब्धाल क्रोधादात्मवोधतः ॥ ३९ ॥

तदनन्तर सखुत्तीन अतः अपने कुन आदि का अभिमान करने वाला भेला-माला वह ब्राह्मण उस अपमान से क्रोध के मारे लाल होकर जनसमूह के मध्य में ही आत्मदत्ता करने के लिये तैयार हो गया ॥ ३६ ॥

नाथो धातुप्रकोपेन मिथ्या पश्यामि मिश्रमम् ।

न मया द्वीपितं किञ्चिद्भित्तौ पाणिः प्रमृज्यताम् ॥ ४० ॥

उस ब्राह्मण की इस अवस्था को देखकर मैंने उनका प्रमादन करते हुये कहा—हे सज्जन ! आप धातु-मय मिट्टि के कारण व्यर्थ में ही गलत सोच रहे हैं अथवा गलत देख रहे हैं । मैंने तो कुछ घूँसा ही नहीं है यदि आप के हाथ में कुछ लग ही गया हो तो भित्ति में आप अपना हाथ फोड़लें ॥ ४० ॥

जात्या चर्ममयं चक्षुस्त्वस्मिन्कः प्रत्ययस्तन ।

मम मद्भाषणीलायाः प्रमाणं वचनं न हिम् ॥ ४१ ॥

अरे ! नेत्र तो जाति से ही चर्ममय हुआ करते हैं' ऐसी अवस्था में आप का उनमें मला कैसे विश्वास हो रहा है ? आपके प्रति सद्भाव रखने की स्वभावगुणी मेरे वचनों पर क्या आप का विश्वास नहीं है ॥ ४१ ॥

इत्युन्वा तीव्रशुष्यैर्गलहस्तादिनादरनः ।

म मया प्रकृतिर्नातस्तथेति प्रत्ययं यया ॥ ४२ ॥

ऐसा कह कर बड़ी बड़ी सौगन्धों से दूब गले में हाथ डाल कर शपथपाने से वह ब्राह्मण मेरे द्वारा शान्त किया गया और मेरे कथन के प्रति पूर्ण रूप से विश्वस्त हो गया अर्थात् मैंने उसके हाथ पर नहीं धूँका है, इस बात को वह मान गया ॥ ४२ ॥

पदे पदे जगन्यस्मिन्निधिर्देवेन निर्मितः ।

विटचारणप्रेक्ष्यानां बुद्धिहीनानलम्बनम् ॥ ४३ ॥

इस संसार में विधावा ने पग पग पर सज्जाने का निर्माण किया

है। (जितनी जितनी बुद्धि हो, वह उतना भोग करे)। पिंड, चारण एवं वेश्याओं के अवतम्बन अर्थात् जादिका के मावन बुद्धिदिशेन यत्कि ही है ॥ ४३ ॥

नवयौवनकाले मे गृहं विप्रसुतः पुरा ।

विशेष रात्रिभोगाय नाम्ना शंकरवाहनः ॥ ४४ ॥

एक घटना मैं तुम्हें सुनाऊ—पहले मेरी युवायस्या के उपाकाल के समय एक रात्रि मैं समोग करने के लिये 'शङ्करवाहन' नाम वाले एक ब्राह्मण के लड़के ने मेरे घर में प्रवेश किया ॥ ४४ ॥

शाण्ड्यादिव्यातिकठिनं पीनं प्रथमयौवनम् ।

तं ब्रह्मचारिणं दृष्ट्वा मोद्रेगाहमचिन्तयम् ॥ ४५ ॥

कठिनोऽयं निशा दीर्घा क्षपिता कामुकैरहम् ।

तस्माद्भोगायहारोऽस्य मया कार्यः प्रयत्नतः ॥ ४६ ॥

अत्यधिक कसे हुये हुये अतः कठोर शरीरवाले मोटे, नवयौवन-संपन्न उस ब्रह्मण ब्रह्मचारी को देखकर कामरोग के कारण उत्कण्ठित हुई मैंने मोचा—यह अत्यधिक प्रपुष्ट शरीरवाला है। रात्रि भी बड़ी है। मैं कामुकों के द्वारा संभोग करके रिक्त कर दी गई हूँ। अतः मुझे प्रयत्नपूर्वक इसके साथ भोग करने की बात टाल देनी चाहिये ॥ ४५-४६ ॥

इति संचिन्त्य सुचिरं मया तैस्तैः कषाक्रमैः ।

आमन्नशय्यावमरे यामः पूर्वोऽतिवादितः ॥ ४७ ॥

काफी देर तक ऐसा सोचकर मैंने, शय्यापर लेटने के अवसर में, विभिन्न कथाओं-वार्ताओं को कट कर रात्रि का प्रथम प्रहर व्यतीत कर दिया ॥ ४७ ॥

आस्तां किमन्यद्वक्तव्यं श्रुतमेतदितस्ततः ।

पतिता नेत्रयोर्निद्रेत्युवाच स पुनः पुनः ॥ ४८ ॥

कथा को सुनते सुनते निद्रा से आक्रान्त वह युवक बारम्बार मुक्त से कहता था—“वस, रहने दो अधिक कहना व्यर्थ है; मैंने इस प्रकार इधर उधर की काफी बातें सुनी हैं। मेरे नेत्रों में अब निद्रा समा चुकी है ॥ ४८ ॥

कथावन्धेऽथ गिरते तत्संगमनिवृत्तये ।

शूलापदेशेन मया कृतः कृतकनिःस्वनः ॥ ४९ ॥

इनके बाद कथाक्रम के समाप्त होने पर, उस युवक के साथ संभोग से छुटकारा पाने के लिये, मैंने शरार-व्यथा के बहाने से बनावटी चालना शुरू किया ॥ ४९ ॥

मोऽथ मुग्धः प्रवृत्त्येव मत्प्रत्ययमोहितः ।

चक्रे शूलोपशान्त्यै मे चक्रे सर्वाङ्गमर्दनम् ॥ ५० ॥

प्रवृत्ति से ही भोला भाला, अब मेरे बगने को भी मत्प्रत्यय समझ कर अज्ञानी बना हुआ उस ब्राह्मणकुमार ने पीडा की निवृत्ति के लिये मेरे सम्पूर्ण अङ्गों का मर्दन (मालिश) किया ॥ ५० ॥

मादरं मृद्यमानेषु तेनाङ्गेषु शनः शनः ।

प्रययौ मोषरोधेन क्षणदा क्षणवन्मम ॥ ५१ ॥

उस युवक के द्वारा धीरे धीरे मुझपर क आदर के साथ सम्पूर्ण अङ्गों के मनने पर अनुकूना को भाँति मुखनायिनी मेरी रात्रि क्षण के समान समाप्त हो गई ॥ ५१ ॥

ततः प्रमाते तद्भोगवञ्चने चिन्तितं मया ।

पशुपुद्भिर्वराक्रोशं मया शूलेन बाहितः ॥ ५२ ॥

उनके बाद उसके साथ संभोग से वञ्चित अर्थात् सुरक्षित रह जाने पर प्रातःकाल मैंने सोचा—“पशु के समान निर्बुद्धि, बेचारा यह ब्राह्मण कुमार मेरे द्वारा शूल के बहाने संभोग से वञ्चित कर दिया गया ॥ ५२ ॥

अनेन मेघमुग्धेन दत्ता भाटी चतुर्गुणा ।

भोगावहारन्यायेन ध्रुवं तामनुयाचते ॥ ५३ ॥

भेड़ के समान मूर्ख इस युवक ने चारगुना संभोग-शुल्क भी दिया है। संभोग से पूर्णतः अस्पृष्ट रहने पर निश्चय ही यह न्यायमान अपने उस द्रव्य को माँगेगा ॥ ५३ ॥

तस्मादेव रतिस्पृष्टीकार्यस्तावद्यथा तथा ।

न्यायाय सुरतोच्छिष्टं कथं ममुपमर्षति ॥ ५४ ॥

इस लिये जिस किसी भी रति इसको रति का स्पर्शमात्र करा दिया जाय। सुरत से यत्किञ्चिन् स्पृष्ट होने पर उच्छिष्ट यह युवक किस भीति अपने शुल्क को माँगेगा ? अर्थात् तब यह द्रव्य वापस माँगने का अधिकारी नहीं रह जायगा ॥ ५४ ॥

इति भ्यात्वाहमारब्धरतिभोगा क्षपाक्षये ।

प्रीत्येवाकरुणं तस्य पण्यानृण्याय चुम्बनम् ॥ ५५ ॥

ऐसा विचार कर मैंने रात्रि की परिसमाप्ति पर उस युवक के साथ संभोग करना प्रारम्भ किया। संभोग के प्रसंग में मैंने उससे द्रव्य से उच्छृण होनेके लिये बनायटी प्रेम के साथ युवक का चुम्बन किया ॥ ५५ ॥

आरुढरतियन्त्रो मे शूलक्लेशकृपाकुलः ।

अलं मत्संगमेनेति सानुरोधोऽवदत्स माम् ॥ ५६ ॥

रतियन्त्र पर आरुढ अर्थात् भगारुढ; मेरे पीटाजन्य कष्ट के प्रति शृपालु वन युवक ने बड़ी ही सहानुभूति के साथ मुझ से कहा—'मेरे साथ सम्भोग बन्द कर दिया जाय अर्थात् आप को पीटा है अतः सम्भोग-क्रिया बन्द कर दी जाय' ॥ ५६ ॥

आवर्जनाय तस्याथ निर्वाजार्जवचेतमः ।

मया मिथ्या प्रियालापैर्विहितो रञ्जनक्रमः ॥ ५७ ॥

निर्व्याज करुणचित्तवाले उस युवक को अत्यधिक सकरुण बना देने के लिये मैंने झूठे प्रिय लगनेवाले आलापोंके द्वारा उसका अनुरजन किया ॥ ५७ ॥

अहो वतामृतस्पर्शस्तवाङ्गेषु विमान्यते ।

अधुनैव मया दृष्टं यस्य प्रत्यक्षलक्षणम् ॥ ५८ ॥

अहो, तुम्हारे अङ्गों का स्पर्श तो आश्चर्यजनक ढंग से अमृतपूर्ण
अर्थान् सुखद है । जिसका प्रत्यक्षलक्षण तो मैंने अभी देखा है ॥ ५८ ॥

गूढाङ्गेन त्वया स्पृष्टे ममास्मिन् रमणस्थले ।

न जाने क्व गतं शूलं मत्पुण्यैस्त्वमिहागतः ॥ ५९ ॥

इस रमण-स्थल में तुम्हारे प्रपुष्ट अङ्गों से आलिङ्गन करने पर मेरी
(व्यथा न जाने-कहाँ चली गई) मैं सोचती हूँ कि तुम मेरे) पुण्यों
के प्रताप से ही यहाँ आये हो ॥ ५९ ॥

इति श्रुत्वाैव मद्वाक्यं सहसा साश्रुलोचनः ।

रत्यर्घरवितः शोकात्मोऽन्तः सानुशयः परम् ॥ ६० ॥

निजं वक्षो ललाटं च ताडयित्वा न पाणिना ।

हा कष्टं हा हतोऽस्मीति वदन्मामिदमब्रवीत् ॥ ६१ ॥

इस प्रकार के मेरे वचनों को सुनकर मद्सा अपनी आँखों में
अश्रु भर कर बीच में ही रवि से रिरत, शोक के कारण भीतर
ही भीतर पश्चात्ताप से पूरित वह युवक अपने हाथों से वक्षःस्थल एवं
ललाट को पीटकर 'हा बड़ा कष्ट है, मैं तो मर गया' ऐसा कहते हुये
मुझ से कह देने लगा ॥ ६०-६१ ॥

पूर्वं नैतन्मया ज्ञातं यन्मदङ्गममागमः ।

शूलं हरति नारीणां मणिमन्त्रौषधादिवत् ॥ ६२ ॥

'मैंने पहले यह नहीं जाना था कि मेरे अङ्गों का संयोग, मणि,
मन्त्र एवं औषध की भाँति, स्त्रियों की व्यथा का हरण करने
वाला है ॥ ६२ ॥

मन्दपुण्यस्य जननी वात्सल्यजननी मम ।

सुचिरस्थायिना मदे शूलेन निधनं गता ॥ ६३ ॥

हे भद्रे ! वात्सल्य को जननी अर्थान् वात्सल्यप्रदानकर्त्री मुक्त
जैसे मन्दभाग्य को उत्पन्न करने वाली मेरी माता बहुत दिन तक अहों
को पीड़ित करने वाले शून (पीडा) के कारण मर गई ॥ ६३ ॥

विदितोऽयं प्रकारश्चेदभविष्यदमंशयः ।

तज्जनन्या वियोगो मे नामविष्यद्विचेतसः ॥ ६४ ॥

निश्चय हो यदि यह बात (मेरे अहों के पीडा-हरण करने की
बात) मुझे शत रहो होती तो निःकरुण मेरा अपनी माता से वियोग
न हुआ होता ॥ ६४ ॥

इत्पुक्त्वा वञ्चिनोऽस्मीति स रुदित्वा विनिर्यया ।

पुरुषाकारमंदिग्धनिर्विषाणवृषोपमः ॥ ६५ ॥

ऐसा कह कर 'मैं ठग गया' ऐसा कह कर रुदन करके पुरुष
की आकृति में अमंदिग्ध बिना पूँछ वाले श्वेत के तुल्य प्रतीत होनेवाला
वह युवक मेरे घर से निकल कर चला गया ॥ ६५ ॥

निरयं भोजनमैयुनप्रणयिनस्त्यक्तान्पकार्याः परं

लोकेऽस्मिन्गलगर्तमात्रसुखिनः सन्त्येव शून्याश्रयाः ।

ये मेघप्रतिमाः क्षयोद्युमतेः सर्वस्वहर्तुः क्षणा-

दाप्तस्येव विनिक्षिपन्ति नितरां निःशङ्कमङ्गे शिरः ॥ ६६ ॥

भोजन तथा मैयुन में हो एकमात्र प्रेम करने वाले, अन्य कार्यो
से रहित, केवल चर्वितचवणमात्र में ही सुखी, शून्यबुद्धिवाले मेघ के
समान बहुत से व्यक्ति इस संसार में हैं ऐसे लोग बिनाश करने के
लिये तत्पर, सब कुछ हरण करनेवाले. क्षण भर के लिये विश्वसनीय
की भाँति प्रतीत होनेवाले व्यक्तियों को गोद में निःशङ्क हो करके अपना
शिर रख देते हैं । उद्यत व्यक्ति पर विश्वास कर लेते हैं ॥ ६६ ॥

इत्यबुद्धिधनाधाननिघनैर्विविधोदयैः ।

कूटपण्यरसामान्यस्तारुण्यमतिवाहते ॥ ६७ ॥

इस प्रकार नासमर्थ व्यक्तियों के गृहीत धनरूप खजानावाले, विविध उपायों के अवलम्बन से उन्नति की ओर बढ़नेवाले, असामान्य धनार्थी परम निपुण एवं कपटप्रवीण वेश्याओं की तरुणता इसी प्रकार से व्यतीत की जाती है ॥ ६७ ॥

अमर्त्येनैव जीवन्ति वेश्याः सत्यविवर्जिताः ।

एताः सत्येन नश्यन्ति मद्येनैव कुलाङ्गनाः ॥ ६८ ॥

सत्यमार्ग का सर्वथा एवं सत्यार्थ परित्याग करनेवाली वेश्यायें असत्य के अवलम्बन से ही जीवित रहती हैं । सत्यमार्ग का अवलम्बन करने पर ये उसी प्रकार से विनष्ट हो जाती हैं जैसे मद्य पान से कुलीन स्त्रियाँ ॥ ६८ ॥

सत्यं विनाशाय पराङ्गनानामसत्यसारा गणिकागणश्रीः ।

सत्येन वेश्या किल दृष्टसारा दरिद्रशाला इव कस्य सेव्याः ॥ ६९ ॥

वेश्याओं के लिये सत्यता का अवलम्बन विनाशकारक सिद्ध होता है, क्योंकि गणिकासमुदाय की शोभा एवं सम्पत्ति तथा अभ्युन्नति असत्यसार हुआ करती है । सत्यता का अवलम्बन करने पर अपनी वास्तविकता के प्रदर्शन के कारण वेश्यायें भला, दरिद्रशाला की भाँति, किस के लिये सेव्य हो सकती हैं ॥ ६९ ॥

दानेन नश्यति त्रिण्डुनश्यति सत्येन सर्वथा वेश्या ।

नश्यति पिनयेन गुरुनैश्यति कृपया च कायस्थः ॥ ७० ॥

सम्पत्ति-दान से त्रिण्डु नष्ट होता है । सत्य के अवलम्बन से वेश्यायें सर्वथा विनष्ट हुआ करती हैं । छात्रों के सामने अत्यधिक पिनय से गुरु विनष्ट होता है और कृपा करने से कायस्थ विनारा को प्राप्ति होता है ॥ ७० ॥

वेश्याजनस्य क्तिवस्येव वञ्चनमायया ।

अहो वैदग्ध्यमित्युक्त्वा परोऽपि परितुष्यति ॥ ७१ ॥

धूर्त व्यक्तियों की भाँति, वेश्या जनों की ठगने की माया को

“अहो, इस वेश्या की आश्चर्यजनक विदग्धता है” ऐसा कह कर अन्य लोग भी परितुष्टि को प्राप्त होते हैं। अर्थात् दुर्गुण रूप प्रव्रज्जनरुमें भी वेश्या का समाश्रयण करने पर विदग्धतारूप सद्वर्गुण के आकार को धारण कर लेता है ॥ ७१ ॥

पुराहं पृथिवीमेतां भ्रान्त्वा जलधिमेखलाम् ।

प्राप्ता वेश्यास्पदं लोमात्पुरं पाटलिपुत्रकम् ॥ ७२ ॥

अपनी तन्नाई के मन्त्राह में मैंने सागररूप मेखलावाली अर्थात् सागरपर्यन्त समूची पृथिवी का भ्रमण करके लोभवश वेश्याओं के प्रधान आश्रयस्थल पाटलिपुत्र नगर को गई ॥ ७२ ॥

बुद्धन्यस्तत्र सर्वज्ञा दृष्ट्वा मामल्पकौशलाम् ।

जहतुः मस्वनं येन हीताहं क्षमामिवाविशम् ॥ ७३ ॥

वहाँ मायाशास्त्र की सर्वज्ञ बुद्धनिर्याँ कम प्रयोग-वेश्या-शास्त्र की अपण्डित-मुक्त का देखकर मेरी खूब हँसी की जिससे लज्जित होकर मैं पृथिवी में धँस नी गई ॥ ७३ ॥

ततस्तेनावमानेन गणेशायतनाग्रतः ।

स्थिता कृतोपवानाहमहंकारविवर्जिता ॥ ७४ ॥

उस अपमान के कारण अहंकारशून्य होकर मैंने गणेश जी के मन्दिर के मन्मुख स्थित हो उपवास किया ॥ ७४ ॥

अथ स्वप्ने गणेनाहं पृष्टा शंकरभूनुना ।

उपवासाः कियन्तस्ते प्राप्ता इति पुनः पुनः ॥ ७५ ॥

जब रात्रि में उपवास की गिरता से मैं सो गई तब स्वप्न में भगवान् शङ्कर जी के पुत्र गणेश जी के द्वारा बारम्बार पूछी गई कि ‘तुम्हारे मिनने उपवास हो चुके ?’ ॥ ७५ ॥

म मयामिहितः कृत्कृतप्राणान्तचेष्टया ।

मामद्वयमतिक्रान्तं व्रतादनश्नस्य मे ॥ ७६ ॥

मैंने छलपूर्वक प्राणान्त की सी चेष्टा करते हुये भगवान् गणेश से कहा—“मुझे व्रत के कारण बिना कुछ खाये पिये दो महीने व्यतीत हो चुके हैं” ॥ ७६ ॥

तच्छुन्या स स्मितमुखः सर्वज्ञः प्राह मां गणः ।

अहो व्रतेऽपि स्वप्नेऽपि नासत्यादस्ति ते च्युतिः ॥ ७७ ॥

मेरी बात को सुनकर सर्वज्ञ भगवान् गणेश जी ने मुझ से कहा—“अहो, व्रत एवं स्वप्न में भी तुम्हारे अनन्य से च्युति (रक्षितता) नहीं हुई” ॥ ७७ ॥

परितुष्टोऽस्मि ते भद्रे निश्चलासत्यनिश्चयात् ।

महामायामयकला लब्धभोगा मविष्यमि ॥ ७८ ॥

“हे भद्रे ! तुम्हारे असत्यसमायण के दृढ़ निश्चय से मैं तुम पर प्रसन्न हूँ। तुम्हें महामायामयी कला एवं भोग सर्वदा उपलब्ध रहेंगे। अर्थात् तुम प्रपञ्च-विस्तार में भी अद्वितीय रहोगी और इसी कारण से भोग भी तुम्हें सर्वदा सुलभ होगा ॥ ७८ ॥

गणेशानुचरः पूर्वमिति मयं वरं ददौ ।

अमर्त्यैर्नरैश्चेष्टयानां भवन्ति धनमपदः ॥ ७९ ॥

भगवान् गणेश ने पहले मुझे ऐसा वर दिया था। इसीलिये मैं कहती हूँ “असत्य के अनन्तधन से ही चेष्टयाओं को धन सम्पत्ति की प्राप्ति होती है ॥ ७९ ॥

धनमधानं जनजीरभूतं लोकेषु तत्रापि विशेषयोगान् ।

जनाभिमारग्रनिवृत्तिमार्जा महीधुजां वेशमृगीदृशां च ॥ ८० ॥

प्रजापति में उनके कन्यापार्थ चारा आर धनय करने वाले राजाओं का एवं कानुक व्यक्तियों के साथ अभिमार को स्वीकार करनेवाली चेष्टयाओं का जीवन लोक में व्यक्तियों के मध्य; उसमें भी विशेष अवसर एवं व्यक्तियों के मयोग में; धनमधान तथा जनो का जीरभूत अर्थात् आप्रयभूत हुआ करता है ॥ ८० ॥

धनेन लभ्यते प्रज्ञा प्रज्ञया लभ्यते धनम् ।

प्रज्ञाथो जीवलोकोऽस्मिन्परस्परनिगन्धनौ ॥ ८१ ॥

धन से प्रज्ञा प्राप्त होती है और प्रज्ञा से धन लाभ हुआ करता है । इस जीवलोक में प्रज्ञा एवं अर्थ परस्पर एक दूसरे से आश्रित रहते हैं ॥ ८१ ॥

ईश्वरः स जगत्पूज्यः स वाग्मी चतुराननः ।

यस्यास्ति द्रविण लोके स एव पुरुषोत्तमः ॥ ८२ ॥

इस ससार में जिस व्यक्ति के पास धन है वही ईश्वर है अर्थात् सब बुद्ध करने में समर्थ है, वही ससार के प्राणियों में पूज्य है, वही चतुर बक्का है, वही चतुरानन अर्थात् ब्रह्मा ने समान् महान् पण्डित एवं कर्ता है, वही पुरुषोत्तम है ॥ ८२ ॥

स एवाहृदयो राहुरलमः स शनैश्वरः ।

उक्रः कुजन्मा मततंगित्तं यस्य न विद्यते ॥ ८३ ॥

निसके पास धन नहीं है, वह हृदयहीन, राहु, आलसी, शनैश्वर के समान मन्दगति, उक्र एवं कुत्सित जन्मशाला माना जाता है ॥ ८३ ॥

सुजातस्य प्रयातस्य माङ्गल्यस्पृहणीयताम् ।

धनिकस्य विकारोऽपि क्षीरस्येव जनप्रियः ॥ ८४ ॥

धनिक अत एव माङ्गल्य का स्पृहणीयता को प्राप्त तथा सुन्दर जन्मरान्ते का विकार भी अर्थान् अनुचित कार्य भी, मत्त व्यक्ति के विकार की भाँति, जन प्रिय हुआ करता है ॥ ८४ ॥

टिप्पणी—ससार में किसी भी कार्य अथवा यात्रादि के पूर्व धनिक व्यक्ति का दर्शन माङ्गल्य एवं निर्धन का अमाङ्गल्य माना जाता है ।

धनिनश्चन्दनस्येव मञ्छायस्य मनोमुषः ।

निष्फलस्यापि लोकोऽयमपेक्षं नहु मन्यते ॥ ८५ ॥

सुन्दर छाया से सम्पन्न एवं सुगन्धि आदि से मन को मुग्ध करने वाले फलरहित चन्दन के सपर्क की भाँति उपकार आदि फल से

रहित धनिक का संपर्क भी प्रापियों के द्वारा अभिमन्त्रित किया जाता है ॥ ८५ ॥

निस्त्रिंशोऽपि मत्स्नेहा मयन्ति श्रीमतः परम् ।

स्वकेशोऽपि निःस्वाना निःस्नेहा यान्ति रक्षताम् ॥ ८६ ॥

श्रीमानों के रक्षण भी अत्यधिक स्नेह (चिक्ने, तेज) हुआ करते हैं और धनरिहीन व्यक्तियों के अपने केश भी तैल से रिहीन होकर अर्थात् बिना तेल के रुठ हो जाते हैं ॥ ८६ ॥

सेव्यः परितुष्टादीनां गुरुः गुरुलानताम् ।

गतिप्रदोऽर्थमानेन व्याममार्ग इत्येततः ॥ ८७ ॥

आदारुचारी की भाँति दम्रत-ऊपर उठा हुआ—धनवान् व्यक्ति ही करियों पर विद्वानों आदि का गति प्रदाता ससेव्य आचार्य है और वही येद्धाओं तथा कलावेत्ताओं का शिक्षक-गुरु है ॥ ८७ ॥

त्रिंशोऽपि सगुणं निःस्वं स्वयं माममित्र द्विजः ।

सद्यः पतति निःमद्यः पतितः केन पूज्यते ॥ ८८ ॥

निम प्रहार माम-विक्रेता अतः पतित ब्राह्मण अपूज्य हो जाता है, इसी प्रकार निर्धन व्यक्ति भी स्वयं अपने गुणों को बेच कर शीघ्र ही पतित हो जाता है और पतित होने पर नमकी अपूजना तो सुनिश्चित ही है; क्योंकि पतित व्यक्ति इस ससार में किसी के द्वारा भी नहीं पूजे जाने ॥ ८८ ॥

गुणिनां चित्तमन्यादृणा निर्गुणराज्यया ।

हृदयेऽप्येव मीदन्ति विषयानामिव ज्ञानाः ॥ ८९ ॥

चित्त की विद्वन्ता से (निर्धनता की अवस्था में व्यक्तियों के चित्त विकृत हो जाया करते हैं) गुणी व्यक्तियों के गुण, निर्गुण की इच्छा से, हृदय में ही उनी प्रकार से अवसादपूर्णक नष्ट हो जाते हैं जैसे विषय स्त्रियों के स्तन ॥ ८९ ॥

विद्वद्भिः परिवारिताः मगुणतामायान्ति विचर्त्तनराः

शूरत्वं मुभटैः दुञ्जोननतरैः प्रख्यातमद्वयताम् ।

तस्माद्विचित्रमाश्रये गुणगणे वित्ते च नान्याश्रये

वित्तं वित्तमनन्यवित्तनियताः संपन्निमित्तं नुमः ॥ ९० ॥

वित्त के कारण विद्वानों से घिरे रहने वाले धनी व्यक्ति मगुणता-गुणरक्षा-को प्राप्त होते हैं। मुभटों ने घिरे रह कर शूरा को प्राप्त होते हैं। नदरा ने समुपत्र व्यक्तियों ने घिरे रह कर प्रसिद्ध एवं पवित्र वशमान को प्राप्त होते हैं अर्थात् सुकृचीन तथा पवित्र वश में उत्पन्न कहे जाते हैं। अतः गुणगणों के वित्त में ही निरान्न करने के कारण एवं वित्त के अन्य वित्तों भी यस्तु का आश्रय न करने से वित्त में ही एकमात्र वित्त को निजिष्ठ करने वाले हम लोग सम्पत्ति के लिये वित्त को ही सुदृढ प्रणाम करते हैं ॥ ९० ॥

जम्मानमाल्यामरणाम्बरस्य धराद्भनानन्दनमन्दिरस्य ।

नित्यप्रकाशोन्मयमेवितस्य स्वर्गस्य वित्तस्य च को विशेषः ॥ ९१ ॥

यमो भी नहीं मलिन होता है मान्य, आभूषण एवं वस्त्र जिनका (जिनसे), धराद्भनाओं के नृत्य गीत तथा निरामादि से आनन्दप्रद है वृत्त-वित्तका (जिनसे) एवं नित्य चलने वाले प्रकाशपूर्ण उत्सवों से लेवित स्वर्ग एवं वित्त में आनन्द है? अर्थात् कुत्र भी नहीं धन्य है। जहाँ वित्त है वही स्वर्ग है ॥ ९१ ॥

अशेषदोषापगमप्रकाशमित्रागमोत्साहमहोन्मवाहम् ।

विक्रान्तशोभां जनयत्यजम् धनं जनानां दिनमभ्युजानाम् ॥ ९२ ॥

मन्यपूर्ण दोष दुर्गुण पक्षा० में दोष रात्रि के नश्वर होने से प्रकाशित मित्र (सुहृद्, पक्षा० में सूर्य) के आगमन रूप मशेत्त्व से अर्हणीय धन एवं दिन क्रमशः व्यक्तियों तथा कमलों की विकासशोभा को नित्य ही उत्पन्न करते हैं ॥ ९२ ॥

चित्तेनाभिजन्तो गुणी परिजनी मानी प्रमाणीकृतः

मद्भिर्जन्तुरपैति साधुपदवीं किं वा बहु ब्रूमहे ।

चित्तेन व्रततीर्थमार्थमरणक्लेशाभियोगं विना

तीर्थन्ते तनपातकव्यतिकरास्ते ब्रह्महत्यादयः ॥ ९३ ॥

चित्त से ही, जब पर तीर्थ, ने सप्रयोजन गन्तव्य में जो क्लेश है
उनको बढाये बिना ही ब्रह्महत्यादि रूप बड़े बड़े पातकों के समूह पार
कर लिये जाते हैं ॥ ९३ ॥

श्रूयतां यत्पुरा वृत्तं वाराणस्यां स्वयं मया ।

श्रुतं विश्रुतमप्यस्य चरितं गृहमेधिनः ॥ ९४ ॥

बहुत पड़ले वाराणसी में जो एक घटना घटी उसे सुनो—स्वयं
मैंने प्रत्यक्ष चरित्रवाने एक स्वपत्नीप्रीति गृहस्थ का चरित सुन रक्खा
था ॥ ९४ ॥

तत्राभयद्वहृदयतिर्धगतलघनाधिपः ।

द्विजन्मा श्रीधरो नाम महाश्रितिरिव रत्नवान् ॥ ९५ ॥

यहाँ धृतिश्री पर के धनियों का मुकुटमणि रत्नों से परिपूर्ण सागर
की भाँति श्रीधर नाम का एक ब्राह्मण गृहस्थ रहता था ॥ ९५ ॥

अधिकल्पतरोस्तस्य राजार्हवरभोजनैः ।

अशरितमभूद् गेहं मोक्षमन्त्रं सदाधिनाम् ॥ ९६ ॥

याचकों के लिये कल्पवृक्ष इन ब्राह्मण के घर में याचकों के लिये
बहुमूल्य गेहः भोजनों से सम्पन्न भोजनमय सर्वदा अशरितम गति से
चला करता था ॥ ९६ ॥

तस्य निप्रमहन्नेषु भुज्जानेषु सदा गृहे ।

लोके युधिष्ठिरकथा श्रुत्यादिरुपां यया ॥ ९७ ॥

उनके घर में सर्वदा सर्वत्र ब्राह्मणों के भोजन करते रहने पर लोक
में प्रसृत उनकी कीर्तिकथा के सामने युधिष्ठिर की कीर्तिकथा धूमिल
पड़ गई ॥ ९७ ॥

ततः कदाचिदाचारनिधेस्तस्य ममाययौ ।

नियतान्मायतिर्गेहं ज्ञानात्मा नाम दिव्यवीः ॥ ९८ ॥

कुछ समय के अनन्तर आचार के नागर उम बिप्र के घर पर अपनी इन्द्रियों को बश में करने वाले, विलक्षण प्रतिभाशाली 'ज्ञानात्मा' नाम के एक यति आये ॥ ९८ ॥

म पूज्यः पूजितस्तेन श्रद्धयोपनिमन्त्रितः ।

पाकशालां ययौ द्रष्टुं भक्ष्यराजिज्जतान्विताम् ॥ ९९ ॥

सादर उपनिमन्त्रित बन्धु वह नेहात्मा उम ब्राह्मण के द्वारा पूजित सज्जित होकर भोजन-पकवानों-की शत-शत राशियों से समलङ्कित उसकी पाकशाला को देखने के लिये गये ॥ ९९ ॥

तत्रापश्यत्स सर्वान्नव्यञ्जनादिगणोपरि ।

सितयज्ञोपवीताङ्गं लम्बमानतनुं शयम् ॥ १०० ॥

रतोई घर में उस यति ने सम्पूर्ण अन्न तथा व्यञ्जन आदि समूह के ऊपर स्वच्छ धवल यज्ञोपवीतधारी, लटक रहा है शरीर जिसका ऐसे शय को देखा ॥ १०० ॥

स्रवद्भिस्तन्य गात्रेभ्यः सूक्ष्मशोणितचिन्दुभिः ।

अन्नं सर्वजनादृष्टः सिच्यमानं ददर्श मः ॥ १०१ ॥

उन्होंने वहाँ देखा कि किसी के द्वारा भी न देखे गये अर्थात् सभी लोगों से अज्ञात, उस शय के शरीर से धीरे धीरे बहनेवाले, छोटे छोटे रक्त के कणों से बनीं का सम्पूर्ण अन्न सिक्त हो रहा है ॥ १०१ ॥

दृष्ट्वा तदतिवीमत्सं घृणामंडुचिताशयः ।

संसृष्टकर्णः स ययौ ततस्मूर्णमलक्षितः ॥ १०२ ॥

अति बीमत्स उस कार्य को देख कर घृणा के कारण संकुचित मन-वाले वे यति अपने कानों को दूते हुये शीघ्र ही अलक्षित हो गये अर्थात् उन्होंने उसे नहीं देखा ॥ १०२ ॥

अथ संगत्सरे याते पुनरन्येत्य कौतुकात् ।

मोऽपश्यन्मांसहीनं तत्त्वायुतद्वं कलेवरम् ॥ १०३ ॥

इसके बाद एक वर्ष के बीतने पर कुतूहलवश पुनः आकर उन यति ने माम्रिहीन, स्नायुओ में लिपटे हुये उम कलेवर को देखा ॥ १०३ ॥

शिरामुसशनैस्तस्य द्विन्नम्नेहकर्णधितम् ।

म दृष्ट्वा भोज्यमगमज्जुगुप्सामीलितेक्षणः ॥ १०४ ॥

उम कलेवर की शिराओ के मेकड़ों मुखभागों से प्रवहमान आर्द्र स्नेहकणों से भोज्य पदार्थों को परिव्याप्त देखकर जुगुप्सा के कारण अपनी आँखें बन्द करके ये महात्मा वहाँ में चले गये ॥ १०४ ॥

वर्षेण पुनरायातः मोऽस्थिग्रेपन्नस्रुतैः ।

अन्नव्यञ्जनमद्राक्षीद्व्याप्तं द्विर्नृत्साकर्णः ॥ १०५ ॥

एक वर्ष के बीतने पर पुनः आकर उन महात्मा ने अस्थिमात्रा-वशिष्ट शय से चूने वाले दो तीन बसा कणों से व्याप्त अन्न तथा व्यञ्जन को देखा ॥ १०५ ॥

कौतुकाद्वत्सरे याते सोऽपश्यत्पुनरागतः ।

कपालशेषफलनादन्नोपरि रजश्च्युतम् ॥ १०६ ॥

पुनः एक वर्ष के व्यतीत होने पर कौतुकवश आकर उन्होंने देखा कि कपालमात्रावशिष्ट कलेवर से अन्न के ऊपर रज (मूत्रा कण) गिर रहा है ॥ १०६ ॥

पडिभर्मामिरथायातः शुद्धं शयनिमज्जितम् ।

रम्यं महानमं दृष्ट्वा पुरोहितमुवाच सः ॥ १०७ ॥

इसके बाद छः महीने के अनन्तर पुनः आकर उन्होंने देखा कि रमोद घर शय में निमज्जित अतः रम्य है । तब उन्होंने यहाँ के पुरोहित से कहा ॥ १०७ ॥

अहो शुद्धपतेरम्य महामयेण पानकम् ।

धीणमल्पेन कालेन लीढं याचककोटिभिः ॥ १०८ ॥

आश्चर्य की बात है कि महासत्र के माध्यम से कोटि पापकों के द्वारा चाट लिया गया इस गृहपति ब्राह्मण का पातक अल्प काल में ही क्षीण हो गया ॥ १०८ ॥

बभूव पूर्वपुरुषोपाजिताम्य गृहाश्रया ।

ब्रह्महत्या शतवती सात्र दानात्क्षयं गता ॥ १०९ ॥

इस ब्राह्मण के पूर्वजों के द्वारा उपाजित और मैरुड़ों वर्ष से इसी के घर में रहनेवाली ब्रह्महत्या सत्र-दान के द्वारा क्षय को प्राप्त हो गई ॥ १०९ ॥

यन्तस्य भवने भुक्तं तैस्तन्पापं समाहृतम् ।

पापमन्नाश्रयं पुंसां भोक्तामृपमर्पति ॥ ११० ॥

जिन लोगों ने इस ब्राह्मण के घर में भोजन किया है, उन लोगों ने इस ब्रह्महत्यारूपी पातक का समाहरण किया है। क्योंकि व्यक्तियों का अन्नाग्नि-अन्न में रहने वाला—पाप भोक्ता के पास चला जाता है ॥ ११० ॥

ब्रह्महत्या भयस्यापि या बभूव भयप्रदा ।

धनेन अपिता सेयमहोधनमहोधनम् ॥ १११ ॥

जो ब्रह्महत्या भगवान् शङ्करावतार भैरव के लिये भी भयप्रद हुई थी वही धन के द्वारा यहाँ विनष्ट कर दी गई, एतद्ध धन की महिमा आश्चर्यजनक है ॥ १११ ॥

टिप्पणी—एक बार भगवान् शङ्कर जी की आज्ञा से शालभैरव ने ब्रह्मा के असन्धभार्थ पद्मन मुख से अट्टलि के मुख से काट दिया था। इसके परिणाम स्वरूप ब्रह्महत्या ने उनका पीड़ा किया। भगवान् शङ्कर जी के निर्देशानुसार ज्य भैरव जी कार्गापुरी में आये तब एकाएक उनके हाथ से मल्लय ब्रह्मा का कपाल गिर पड़ा और ब्रह्महत्या बोला : हा ! कर्ता हुई पाताल की चली गई। जहाँ पर ब्रह्मा का कपाल गिरा था तम स्थान को कपालमोचन कहते हैं। कपालमोचन तीर्थ के रूप में प्रसिद्ध है।

इत्युक्त्वा स शिलापटे लिखित्वा श्लोकगादरात् ।

पुरोहितेनार्च्यमानः प्रययौ ज्ञानलोचनः ॥ ११२ ॥

ऐसा कह कर और शिलापट्ट पर ऊपर वाला श्लोक आदरपूर्वक
लिखकर पुरोहित जी के द्वारा पूजित सज्जन होकर 'ज्ञानलोचन'
(ज्ञानात्मा) नामक उक्त यति वहाँ से चले गये ॥ ११२ ॥

वाच्यमानः स विद्वद्भिः कस्तगाद्गुनवादिभिः (?) ।

श्लोकार्थगौरवरसान्मया तत्र स्वयं श्रुतः ॥ ११३ ॥

धन की महिमा को अद्भुत बतलाने वाले विद्वानों के द्वारा कहा
जाता हुआ यह श्लोक धन के गौरवपूर्ण रस के कारण अथवा अर्थ
(श्लोकार्थ) के गौरवपूर्ण रस के कारण वहाँ मेरे द्वारा स्वयं सुना
गया ॥ ११३ ॥

शमयति चितं पापं घापं वितुम्पति दुःमहं

कलयति कुलं कल्याणानां कलङ्करुणोज्जितम् ।

धनमरुदुपं तीर्थं पुंसां तदेन महत्तपः

मुकृतनिधये श्रद्धाधाम्ने धनाय नमो नमः ॥ ११४ ॥

धन बड़े हुए सैकड़ों पापों का शमन करता है । दुःमह शाप को
विनष्ट करता है । कुल को निष्कलक एवं कल्याणों का भाजन और तीर्थ
को पापरहित आर्थान् निमल बनाता है । यह धन ही पुरुषों के लिये
बहुत बड़ा तप है । पुण्य के आकर तथा श्रद्धा के धाम धन की शत शत
नमस्कार हैं ॥ ११४ ॥

एतदारूप्यं युक्तार्थमर्थस्तुतिमयं मया ।

नीतं [दो]शापदेशानां ममये मारतन्वताम् ॥ ११५ ॥

धन की प्रशंसा से परिपूर्ण इस वचार्थ बात को सुनकर मैंने अवस्था-
परिवर्तन के समय इसको मूलमन्त्र अर्थात् सारभूत प्रयोजन-साधक
उपकरण के रूप में ग्रहण किया है ॥ ११५ ॥

कुरु चित्तार्जनं तूणं भवति योषिता ।

न यौवनमहायोऽयं तनये कायविक्रमः ॥ ११६ ॥

तुम नदिति लोगों के चित्त को आकृष्ट करो । वेश्याओं का यौवन-पूर्ण शरीर ही द्रव्य का माधन होता है । हे पुत्रि ! यौवन से लगलन हुए शरीर का उल्लापन त्रिस्कार-ठाक नहीं ॥ ११६ ॥

तनुवल्लीयमन्तश्रीर्वदनेन्दुशरनिशा ।

पयोधरोद्गमप्रावृट् चपला यौवनघृतिः ॥ ११७ ॥

युवनी नेत्र्याओं की शरीरललिका वसन्त का सुग्मा है । सुग्मचन्द्र चन्द्रिका घमला शरद की शर्मरी है । पयोधरों की उद्भिन्नता बरों है और यौवन की छद्म मानो चपला मिथुन है ॥ ११७ ॥

तारुण्ये तरले सुभ्रूर्भ्रमद्भ्रमद्भ्रमिभ्रमे ।

स्त्रीणा पीनस्तनाभोगा भोगा द्वित्रिदिनात्मवः ॥ ११८ ॥

हे सुलावनी ! चंचल भ्रुवें का पकड़ा के मीन्दय से सञ्चित चपल तरुणाई के आने पर स्त्रियों के रिगाल स्तनकलशों के परिसर-प्रदेश बहुत कम दिनों तक ही आनन्ददायक समाग के आलम्बन हुआ करत हैं ॥ ११८ ॥

अयं मुखमरोत्तमभ्रमरभिभ्रमः सुभ्रुवां

वृचस्थलदुरद्वजः पृथुनितम्बलीलायिणी ।

न यौवनमदोदयश्चरति चारुदान्तिच्छटा-

कूलप्रिललिकुलिनीपुलिनराजहंमथिरम् ॥ ११९ ॥

सुग्म कमल पर भ्रमर की शेमा को धारण करने वाला अर्थात् मुख की श्रीशुद्धि का आधायक, वृचस्थल का दुरद्वज, पृथु नितम्ब का नृत्य-मग्न मयूर और आकर्षक मीन्दय का छटामग्न स्वरूप प्रिललैरूपी सरिता के तट पर निशान करने वाला राजहंम मुक्ताचनी तरुणियों का यौवनमदोदय चिरकाल तक मिचरण नहीं करता अर्थात् तरुणियों के यौवनमद की पूर्णता चिरस्थाचिनी नहीं हुआ करती ॥ ११९ ॥

आलानमुन्मूल्य सुखाभिधानं तारुण्यनागे गमनोद्यतेऽस्मिन् ।

पलायते कामिगणेऽङ्गनानां विमर्दभित्तयेव कुचाः पतन्ति ॥१२०॥

आनन्द एवं उल्लास नामक आलान (गज के बाँधने का प्रपुष्ट निश्चातस्तम्भ) को उखाड़कर इस तारुण्य (यौवन) रूपी भक्त गज के गमनोद्यत होने पर कामिजन भाग राडे होते हैं और कुचल जाने के भय से ही फ़ानिनियों के स्नान गिर पड़ते हैं । अर्थात् यौवन के चले जाने पर कामी जन स्त्रियों का परित्याग कर देते हैं और उनका स्नान भी गिर जाता है ॥ १२० ॥

युवतितटिनीप्रावृत्कालः सर्पानपयोधरः

कृतमदमरारम्भः कामी विलामशिखण्डिनाम् ।

मदनपचनालोल

..... ॥१२१॥

युवती मरिता है । उसका आकर्षक पान पयोधर जल से पूर्ण अतः पान मेघमाला से संबलित वर्षाकाल है । कामी ही मनोमुग्धकारी विलासपूर्ण मयूरों का किया गया मद से परिपूर्ण मृत्यु है । युवतियों का स्थानभ्रष्ट वस्त्र मदनरूपी पवन से चंचल फ़ामोशीपत्र लता है । ॥ १२१ ॥

झोडारह्नीकुसुमममये रागपमाकराकै

दपौद्याने वदनशशभृत्कौमुदीकार्तिकेऽस्मिन् ।

यातं मुग्धद्रनिपतुलया यौवने कामिमित्त्रे

पण्यम्नीणां व्रजति सहसा दुर्दशाशेषतां श्रीः ॥ १२२ ॥

संभोग कीड़ाहूयी लनिका के कुसुम-समय अर्थात् फूलने की श्रुत; अनुरागरूपी कमनाकर के सूर्य; द्रुप के उद्यान अर्थात् उत्पादक; मुक्तरूपी चन्द्रमा की निर्मल चाँदनी के लिये कार्तिक महीना (कार्तिक के महीने में चन्द्रमा की चाँदनी अत्यधिक विशद एवं मुद्दारनी लगती है); कामिजनों के मित्र इस यौवन के, चञ्चल धन की भाँति अथवा

सुगंध व्यक्ति के घन की भोंति, चले जाने पर वेश्याजनों की श्री सदा-
दुर्दशा को प्राप्त हो जाती है ॥ १२२ ॥

न तु यौवनमात्रेण लभन्ते ललनाः श्रियम् ।

भोगार्हा वृद्धरुग्णी तरुणी हरिणी वने ॥ १२३ ॥

ललनायें अपने वैभवमात्र से ही शोभा एवं लक्ष्मी को नहीं प्राप्त
कर लेती । व्यवहार में देखा यह जाता है कि वन में वृद्धा हस्तिनी
भोगार्हा होती है और तरुणी हिरनी बेचारी अकेली घूमती रहती है,
अथवा सुन्दर सुन्दर बख (वन) आदि घारण करने पर वृद्धा हस्तिनी
स्त्री (हस्तिनी स्त्रियों का एक भेद है) भोग के योग्य बन जाती
है और बख आदि प्रसाधन के अभाव में मृगवधनी तरुणी भी स्त्री
प्राहकों के अभाव में भोग से वंचित रह जाती है ॥ १२३ ॥

रूपवत्पद्भुतास्मीति कान्ते त्याज्यस्त्वयामदः ।

वने मयूराः शुष्यन्ति बलिमश्नन्ति वायमाः ॥ १२४ ॥

हे सौन्दर्यशालिनी ! 'मैं अद्भुत सौन्दर्यशालिनी हूँ' ऐसे
मद की तुम छोड़ दो क्योंकि सौन्दर्य के धाम भोले भाले मयूर
प्राहकों के अभाव में वन में भूखों मरते हैं और काँप; जो कि छत्त-
कपट के छाकर होते हैं, आनन्दपूर्वक बूढ़ बूढ़ कर बलि (देव भाग)
खाते हैं ॥ १२४ ॥

पूर्णां यक्रचलां.....ते जनाः ।

क्षीणोऽपि वृद्धिमायाति वृटिलैककलः शरी ॥ १२५ ॥

पूर्णा, सौन्दर्यशालिनी, वक्रगामिनी पूर्णिमा की चन्द्रकला क्षीण हो
जाती है और लोग उसका अभिनन्दन भी नहीं करते किन्तु द्वितीया का
एककला (पक्षा० में एक कीशाल) वाला अतः क्षीण भी वृटिल शरी
वृद्धि को प्राप्त होता है ॥ १२५ ॥

अपुष्पं कुसुमेषु कलकलतालाप्यलीलाहरं

वदं न्यवृत्तचन्द्रविम्बमधरो विम्बप्रभातस्करः ।

रूपं नेत्ररसायनं किमपरं सुश्रोणि तत्रापि ते

शिक्षाहीनतया मदद्विरदवत्प्राप्नोति नार्थाक्रियाम् ॥ १२६ ॥

हे सुन्दर कटितटवाली ! तुम्हारी टेढ़ी दोनों भ्रुकुटियाँ कामदेव की घनुर्लता की मौन्दर्यलीला का हरण करने वाले हैं । तुम्हारा आनन चन्द्रमण्डल का भी तिरस्कार करनेवाला है । तुम्हारे अधर—विम्बा-फल की रक्तिम कान्ति को चुरा लेनेवाले—छीन लेने वाले—हैं । कहाँ तक कहा जाय तुम्हारा रूप नेत्रों के लिये रसायन—जीवन-दायिनी औषध है । ऐसी अवस्था में भी उपयुक्त शिक्षा के अभाव के कारण तुम्हारा रूप, मत्त हाथों की भाँति, अर्यक्रिया (प्रभूत सम्पत्ति पश्चात् में सार्थकता) को नहीं प्राप्त हो रहा है ॥ १२६ ॥

तथेयं यौवनतरोऽद्याया विस्मयकारिणी ।

यया कामुकलोकस्य स्मरतापः प्रवर्तते ॥ १२७ ॥

तुम्हारे यौवनरूपी वृक्ष की यह छाया विस्मय को उत्पन्न करने वाली है; क्योंकि इस छाया के सेवन से शान्ति मिलने के बदले स्मरताप ही बढ़ता है ॥ १२७ ॥

रागनागरमंजातत्रिद्रुमद्रुमपल्लवैः ।

तनाधरे स्मितरचिः करोति दुसुमभ्रमम् ॥ १२८ ॥

तुम्हारे अपरोष्ठ पर छिटकी हुई मधुर मुस्कान की छटा अनुरागरूपी सागर से उत्पन्न त्रिद्रुमवृक्ष के पल्लवों से रक्तपुष्प की भ्रान्ति को उत्पन्न कर रही है ॥ १२८ ॥

भाति मचन्द्रनतिलकं कालागुरुकुटिलपल्लवाभरणम् ।

वदनं नन्दनमेतद्भ्रूलतिकालास्यललितं ते ॥ १२९ ॥

दर्शनों को आनन्दित करनेवाला, भ्रूलतिका के मधुर नृत्य से ललित, चन्द्रन एवं तिलक से अलङ्कृत तथा कृष्ण अगुरु से निर्मित कुटिल पल्लवरूप आभूषण को धारण करनेवाला तुम्हारा यह मुख अत्यधिक सुरोमित हो रहा है ॥ १२९ ॥

यातः सुन्दरि सुतरां स्तनभारपरिश्रमः शनकैः ।

प्रोषितशैशवशोकादिव मध्यः कृशतरत्वं ते ॥ १३० ॥

हे सुन्दरि ! तुम्हारा विपुल स्तनकलश के बन्धन करने के भार का परिश्रम धीरे धीरे षट् ही रहा है अर्थात् तुम्हारे स्तनकलश अभी मत्त हाथों के गण्डम्यल की भाँति वृद्धयुग्मल ही हैं । तुम्हारी कटि मित्र शैशव के चले जाने के शोक से मानो अधिक कृशता को प्राप्त हो रही है अर्थात् अभी तुम्हारी कटि और अधिक पतली हो रही है ॥ १३० ॥

टिप्पणी—रटि न दुर्बलता से नितम्ब की शुक्लता का और नचि न मन्दित है । घन पयोधर एवं क्षामतर मध्य भाग शय में भी काम का मंचार कर देने वाले माने गये हैं ।

तथाप्युपायशून्येन रूपेणानेन सुन्दरि ।

न प्राप्यन्ते प्रकृष्टेन प्रयत्नेनेव संपदः ॥ १३१ ॥

हे सुन्दरि ! ता भी उपाय से रहित तुम्हारे इस रूप में, प्रकृष्ट प्रयत्न के बिना अप्राप्य संपत्ति की भाँति, घन नहीं प्राप्त किये जा सकते ॥ १३१ ॥

गुणरती ललितापि न शोभते तनुतरार्यकदर्यनयान्विता ।

सुरुरिभक्तिरिवार्यगती परं व्रजति वेश्वरपूः स्पृहणीयताम् ॥ १३२ ॥

अलसार्थों से अलंकृत, ललित एवं अर्थरती होती हुई भी स्वनर भी अर्थ की वदर्यता से सवलित सुरुरि की भक्ति की भाँति, मोन्दर्यादि-गुणशालिनी, ललित अर्थात् मनोहर तथापि स्वर्ण्य भी धन का विरहकार करने वाली वेश्वर परांग स्पृहणीयता को नहीं प्राप्त करती ॥ १३२ ॥

संसक्तेषु सुरामयी धनगुणाधानेषु लक्ष्मीमयी

स्कीर्तार्येषु मुद्यामयी विपमयी निष्क्रान्तविचेष्टु च ।

वेश्या शङ्खमयी नितान्तकृदिला सद्भावलीनेषु या

देवानामपि सुभ्रु मोहजननी क्षीरोदवेलेव सा ॥ १३३ ॥

हे सुभ्रु ! देवताओं में भी मोह (भ्रम) को उत्पन्न करने वाली, सुरामयी, लक्ष्मीमयी, सुधामयी, विषमयी एवं शरमयी क्षीरसमुद्र की बेला (तरंग) की भाँति, आसक्त व्यक्तियों में मदिरा का काम करने वाली, धनी एवं गुणी व्यक्तियों में लक्ष्मीमयी, प्रभूत सम्पत्तिशाली व्यक्तियों में अमृतमयी सी प्रतीत होनेवाली, धनविहीनों में विषमयी लगनेवाली, सद्भावमयवर्तित अथवा सद्भावरहित व्यक्तियों में नितान्त कुटिल राज्य सी मालूम पड़नेवाली वैश्या, दूसरे के विषय में क्या कहना, साक्षात् देवताओं को भी मोहित करनेवाली होती है ॥ १३३ ॥

इति तथा वचनामृतमर्पितं श्रवणपेयमवाप्य कलावती ।

जननि मे द्रविणाधिगमोचितं परिचयं कथयेति जगाद ताम् ॥ १३४ ॥

इति श्रीचेन्नेन्द्रारिचिताया समयमाट्टकाया पूजाधरोपन्यासो(?)नाम
चतुर्थ समय ।

इस प्रकार उस वृद्धा के द्वारा कहे गये, श्रवण सुखद वचनामृत प्राप्त करके कलावती ने उससे कहा—हे मात ! मेरे लिये प्रदान भन प्राप्त करने के योग्य उपाय को बतलाओ ॥ १३४ ॥

मद्राकनि चेन्नेन्द्र के द्वारा विरचित समयमाट्टका का यह
'पूजाधरोपन्यास' नामक चौथा समय समाप्त हुआ ।



पञ्चमः समयः

अथ मन्मथमत्तानां करिणामिव कामिनाम् ।

उन्धाय बन्धसोमिश्रामाचचक्षे जरञ्चिछा ॥ १ ॥

कलारत्नों की प्रार्थना को सुनकर उस जरठा वेश्या ने, काम से मनशाने हाथियों को बाँधने के लिये—चर में करने के लिये—हस्तिनी का शिखा को भाँति, कामपटित कामा लगा का आकुट कर एक दम बंधा में करने के लिये कुचदाक्षियों—वेश्याओं—को शिखा का उपदेश देना प्रारम्भ किया ॥ १ ॥

श्रुयतां पुत्रि मरुत्र विचित्रोपायवृत्तये ।

मया दुहितृवात्मस्यादर्थ्य किञ्चित्तदुच्यते ॥ २ ॥

हे पुत्रि ! सुनो, सर्वत्र विचित्र उपायों को प्रयुक्त करने के लिये, मैं पुत्री प्रेम के कारण, कुछ ठाम बात का बतला रही हूँ ॥ २ ॥

पूर्ण भावपरीक्षैव कार्पा यत्नेन कामिनाम् ।

ज्ञातरागविभागानां कर्तव्यौ त्यागमंग्रहौ ॥ ३ ॥

सर्वप्रथम कामिनियों की, प्रयत्नपूर्वक, भावपरीक्षा हो कर्तव्य चाहिये। कामियों में वर्तमान राग (प्रेम, अनुराग) की मात्रा को जानकर ही उनका त्याग अथवा संग्रह करना चाहिये ॥ ३ ॥

कुमुभरागः मिन्दूररागः कुटुमरागवान् ।

लाजरागोऽथ माञ्जिष्ठो रागः काशयरागमृन् ॥ ४ ॥

केमरिया राग (रंग, कजर), मिन्दूरराग, कुटुमराग, लाजा (लाठी) राग, माञ्जिष्ठराग (माञ्जिष्ठ राग), काशयराग (कमेश-रंग, गेरुआरंग) ॥ ४ ॥

हारिद्रो नीलरागश्चेत्यष्टौ वर्गानुकारिणः ।

सुवर्गरागश्चाप्राख्यो रात्रिरागस्तथापि ॥ ५ ॥

गगः मीमरुमंज्ञथ लौहो मणिमण्डपः ।

काचगमन्या शैलो दृष्टो घात्वनुकारिणः ॥ ६ ॥

हरदोराग, नान्तराग—ये आठ रागराग (राग) का अनुकरण करनेवाले हैं अर्थात् आठ प्रकार के रागों के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं । सुनडला राग, वाम्न (चाँचा) राग, सासकराग (शीशाराग), लोहिआ-राग, मणिनकुत्तराग, काचराग, शेनराग ये आठ प्रकार के राग घ वुओ में रहने वाले हैं ॥ ५-६ ॥

मांघ्यरागस्तथा चान्द्रस्तर्धेन्द्रायुध एव च ।

वैद्युताङ्गाकेन्द्राख्यरश्मिरागस्तर्धेन्द्र च ॥ ७ ॥

मन्ध्या के समय होनेवाला राग, चन्द्रमा का राग, इन्द्रयुगौ राग, विद्युत् सवन्धी राग, मगन मन्धो राग, केतु सवन्धी राग, मूरराग ॥ ७ ॥

राहुरागोऽष्टमथेति रागा गगनमङ्गिनः ।

श्रोतरागोऽक्षिरागश्च रमनामंथयस्तथा ॥ ८ ॥

राहुराग—ये आठ प्रकार के राग आकाश में रहनेवाले हैं । कान का राग (प्रेम) नेत्र का राग, चिह्ना में रहनेवाला राग ॥ ८ ॥

त्वग्रागोऽप्राणरागश्च मानसो बुद्धिमंभरः ।

अहंकाराभिधानश्चेत्यष्टाविन्द्रियमंगकाः ॥ ९ ॥

धन्व का राग, नामिका का राग, मन का राग, बुद्धि का राग और अहंकार नामक राग—ये आठ प्रकार के राग (अनुराग, प्रेम) इन्द्रियों में रहने वाले हैं ॥ ९ ॥

धृतरागोऽधरागश्च कृकलामाह्वयस्तथा ।

मेघरागः धरागश्च नररागस्तथापि ॥ १० ॥

धृतराग, अधराग, कृकलास (द्विरकृत्तो गिराष्ट) राग, मेघराग, उरुधराग तथा गर्दभराग ॥ १० ॥

मार्जाररागो हस्त्याख्यश्चेत्यष्टौ प्राणिभेदजाः ।

शुक्ररागो हंनरागस्तथा पारावतामिधः ॥ ११ ॥

बिटालराग, हस्तीराग—ये आठ प्रकार के राग प्राणियों के भेद से समुत्पन्न हैं । शुक्रराग, हंनराग, पारावतराग ॥ ११ ॥

मायूरश्चटकाख्यश्च कृकवावृममुद्गवः ।

क्षोक्तिनो जीमजीमाख्यश्चेत्यष्टौ पक्षिजातयः ॥ १२ ॥

मयूरानंबग्यो राग, चटकाराग, कृकवावृ-समुद्गव राग, क्षोक्तिनराग, चक्रवाकराग—ये आठ प्रकार के राग पक्षिजात में रहनेवाले हैं ॥ १२ ॥

केशरागोऽम्भिरागश्च नखाख्यः पाणिमंगतः ।

दन्तरागस्तथा पादगगमितलकरागवान् ॥ १३ ॥

केशराग, अस्थिराग, नखराग, पाणि में रहने वाले राग, दन्तराग, चरणराग, तिलकराग ॥ १३ ॥

कर्णभूराभिधानश्चेत्यष्टौ भविभाविनः ।

छायारागस्तथा भूतरागोऽपस्मारवानपि ॥ १४ ॥

कर्णभूर नामक राग—ये आठ प्रकार के राग अन्न में रहने वाले हैं । छायाराग, भूतराग, अपस्मार (मृगी) राग ॥ १४ ॥

ग्रहरागोय गान्धर्वो यक्षाख्यः क्षोभरागमृदु ।

पिशाचराग इत्यष्टौ महारागाः प्रकीर्तिताः ॥ १५ ॥

ग्रहराग, गान्धर्वराग, यक्षराग, क्षोभराग, पिशाचराग—ये आठ प्रकार के राग महाराग कहें गये हैं ॥ १५ ॥

कौमुमः कुम्भरागश्च नारद्वह्नीऽथ दाडिमः ।

मधरागः कुट्टरागो विनर्पाख्यश्चितामिधः ॥ १६ ॥

कौमुमराग, कुम्भराग, नारद्वह्नीराग, अनारराग, नन्दराग, कुट्टराग, विनर्प (एक प्रकार की बीनारी, कुतड़ा राग) राग, चितानामक राग ॥ १६ ॥

आमरोऽप्यथ पातङ्गो वृश्चिकाख्यो ज्वराभिधः ।

अमाख्यः स्मृतिजन्मा च रतिरागो ग्रहाभिधः ॥ १७ ॥

अमरसम्बन्धी राग, पतङ्गसंबन्धी राग, वृश्चिकनामक राग, ज्वर-
नामक राग, अमनामक राग, स्मृतिजन्य रतिराग, ग्रहनामक राग ॥ १७ ॥

रागो रुधिरसंज्ञश्च पौडशैते प्रकीर्णकाः ।

मंक्षिप्तं लक्षणं तेषां क्रमेण श्रूयतामिदम् ॥ १८ ॥

रुधिरसंज्ञकराग—ये सोलह प्रकार के राग चतुर्दिक् उपलब्ध होने
वाले हैं। इन सबका सक्षेप में इस प्रकार लक्षण सुनो ॥ १८ ॥

कौमुम्भो रक्षितः स्यायी क्षणान्नश्यत्पुपेक्षितः ।

स्वभावरुक्षः सैन्दूरः स्नेहश्लेपेण धार्यते ॥ १९ ॥

कैसरिया रंग भली भाँति रक्षित रहने पर स्यायी होता है और
उपेक्षित होने पर क्षण भर में नष्ट भी हो जाता है। स्वभावरुक्षः रुखा
सिन्दूरी-सिन्दूरसंबन्धी-रंग स्नेह (तैल-अनुराग) के साथ मिश्रित
होने पर ही धारण किया जाता है ॥ १९ ॥

अल्पलीनः सुसार्यव घनो दुःसाय कौङ्कुमः ।

तप्तः श्लिष्यति लाक्षः श्लेपं नायाति शीतलः ॥ २० ॥

कुङ्कुमराग पतङ्गा हलका रहने पर सुखप्रदायक तथा-भाड़ा होने पर
दुःखदायक होता है। लाक्षाराग तप्त-उष्ण रहने पर ही जुड़ता है और
शीतल हो जाने पर संश्लिष्टता-जोड़-को नहीं प्राप्त होता ॥ २० ॥

तप्तः शीतश्च माञ्जिष्ठः स्थिरभोगध्रुवः समः ।

स्थिरो रौक्ष्येण काषायः स्नेहयोगेन नश्यति ॥ २१ ॥

माञ्जिष्ठराग चाहे तप्त हो और चाहे शीतल हो, समानरूप से ही,
काफी समय तक भोग-प्रयोग-के योग्य रहता है। काषायराग रुक्ष
रहने पर विरस्थायी होता है किन्तु यही तैल, पानी आदि चिकने
पदार्थ के संयोग से शीघ्र ही नष्ट हो जाता है ॥ २१ ॥

सुरक्षितोऽपि हारिद्रः क्षणेनैव विरज्यते ।

नीलो देहद्वयस्यायी वार्यमाणोऽपि निश्चलः ॥ २२ ॥

सुरक्षित रहने पर भी हरिद्राराग क्षणभरके लिये ही अर्थात् स्वल्प-
काल के लिये ही विशिष्टरूपसे रञ्जित होता है । नीलराग [नीला रंग]
देह [आधार रूप वस्त्र आदि] के विनाश पर्यन्त रहनेवाला तथा घोने
पर भी निश्चल-अमिट होता है ॥ २२ ॥

सौवर्णश्लेदनिर्घर्षतापैस्तुल्यरुचिः सदा ।

मृज्यमानस्य वैमल्यं तान्नयन्नस्य नान्यथा ॥ २३ ॥

सौवर्ण (सुवर्ण सम्बन्धी) राग काटने पर, घिसने पर तथा
तपाने पर -भी सर्वदा समानरूप से ही चमकीला बना रहता है ।
तान्नसंहारराग की विमलता मलने-रगड़ने-पर ही होती है अन्यथा वह
मलिन हो जाता है ॥ २३ ॥

रीतिनाम्रस्तु मालिन्यं स्नेहेनाप्युपजायते ।

मैसस्यादौ च मध्ये च क्षये च मलिना रुचिः ॥ २४ ॥

रीतिनामक राग की मलिनता स्नेह (तैल आदि) से भी होती है
सोसक राग आदि मध्य और अन्त में अर्थात् सर्वदा मलिन ही
रहता है ॥ २४ ॥

तीक्ष्णस्वभावाल्लोहस्य कठिन्याच्च न नम्रता ।

मणिनामा च निर्व्याजः सहजस्वच्छनिश्चलः ॥ २५ ॥

लोह की कठिनता से भी तीक्ष्ण स्वभाव होने के कारण नम्रता
होती है अर्थात् कठोर भी लोह जब तीक्ष्ण करने के लिये तपाया जाता
है तब उसमें नम्रता आ जाती है । मणिराग, बिना कारण के भी,
स्वभावतः निर्मल और निश्चल होता है ॥ २५ ॥

स्वभावभिदुरः काचमंत्रशूलनिरीक्षकः ।

शैलेऽपि पौरवस्थस्य हृदयामावनीरसः ॥ २६ ॥

स्वभावतः दूटनेवाला काचसंज्ञकराग छलनिरीक्षक (अन्यथा देखने वाला अथवा मसाला आदि से देखने वाला) होता है । हृदयहीन होने के कारण नीरस शैल (शैलराग) भी गौरवपूर्वक उन्नत होकर स्थायी रहने वाला होता है ॥ २६ ॥

सांघ्यथलथ नित्यश्च कल्पदोषो दशाश्रयः ।

चन्द्ररागः प्रशान्तार्तिशीतलः क्षयवृद्धिमाकृ ॥ २७ ॥

सान्ध्यराग क्षयस्थायी, सर्वदा होनेवाला, रात्रि तथा दोषों (चोरी आदि) का उत्पादक तथा सन्ध्याश्रयी होता है । क्षय एवं वृद्धि का भाजन चन्द्रराग प्रशान्त एवं सन्तापशामक होता है ॥ २७ ॥

ऐन्द्रायुधो बहुरुचिर्नक्रमायात्रिलासभूः ।

त्रिद्युतस्तरलारम्भदृष्टनष्टविकारकृत ॥ २८ ॥

इन्द्रधनुषी राग विभिन्नकान्तिवाला, एक एवं माया के विलास का कारण होता है । त्रिद्युत-सम्बन्धी राग भट्टिति प्रारम्भ होने वाला, देखने मात्र में ही नष्ट हो जाने वाला और विकार (मेघसंघर्ष) से प्रादुर्भूत होनेवाला होता है ॥ २८ ॥

अङ्गारः स्त्रीजमानज्ञाज्वलितो लोहिताननः ।

केतुसंज्ञः स्फुटानर्थकारी बन्धनधादिभिः ॥ २९ ॥

अङ्गार (भौम) राग स्त्रीजनों की अवस्था से अथवा स्त्रीजनों के द्वारा विहित अवस्थासे प्रज्वलित तथा लोहितानन होता है । केतुसंज्ञक राग बन्धन अथवा बंध आदि के द्वारा स्पष्ट रूप से अनर्थ करनेवाला होता है ॥ २९ ॥

आर्कस्तीक्ष्णतया नित्यसंतापः सततोदयः ।

मिषक्षयैषी त्रिषमो राहुरागो मदाग्रहः ॥ ३० ॥

नित्य उदित होने वाला सूर्यराग तीक्ष्ण होने के कारण नित्य ही सन्तापप्रद होता है । भयङ्कर राहुराग मित्र (सूर्य) के विनाश को चाहनेवाला मदाग्रह है ॥ ३० ॥

श्रौत्रः कर्णसुखाम्यामाद् गुणाकर्णनतत्परः ।

अधिजन्मा परं रूपमात्रे परिणतस्पृहः ॥ ३१ ॥

श्रौत्र राग कान के सुख के अभ्यास के कारण अर्थात् कान के सुखप्रद वस्तुओं के सुनने के अभ्यास के कारण अन्ध्रे अन्ध्रे गुणों के सुनने में तत्पर रहता है । नेत्रजन्मा राग अर्थात् नेत्रका राग केवल रूप मात्र में ही स्पृह्यालु हुआ करता है ॥ ३१ ॥

रामनो निविधास्वादभोज्यनंहारलौल्यवान् ।

त्वङ्मयः सर्वमुत्सृज्य मर्माङ्गालिङ्गनोत्सुकः ॥ ३२ ॥

रसना-सम्बन्धी राग विविध आस्वादमाने भोजनों के सहार करने का लालची होता है । त्वक् सम्बन्धी राग सब वृद्ध छोड़कर प्रिय के सर्वाङ्ग के आलिङ्गन के लिये ही उत्सुक रहता है ॥ ३२ ॥

घ्राणारव्यः पुष्पधूपादिभूरिर्मारमलोभमृत् ।

मान्मः मतताम्यस्तम्पृहामात्रमनोरथः ॥ ३३ ॥

घ्राणराग पुष्प, धूप आदि की अत्यधिक सुगन्धि का लोभी होता है । मानसरोग सर्वदा अन्यस्व पदार्थ में ही एकमात्र स्पृहा करने वाला होता है ॥ ३३ ॥

बुद्ध्याख्यो गुणवन्कान्तामक्तिव्यमनवर्जितः ।

अहंकाराभिधः इन्द्राध्यनंगमोन्नतिलक्षणः ॥ ३४ ॥

बुद्धि नामक राग गुणशाली प्रिय अथवा प्रिया (कान्त, कान्ता) विषयक धातुस्तिरूप व्यसन से वर्जित रहता है । अहंकार नामक राग प्रशस्तनीय व्यक्ति अथवा पदार्थ के संगम से उन्नति करनेवाला होता है ॥ ३४ ॥

धृपसंज्ञश्च तारुण्यान्कायदर्पणलोद्भवः ।

अधस्तु रतमात्रार्थी तत्त्वालोच्यतकातरः ॥ ३५ ॥

धृपसंज्ञक राग तरुणता के कारण शारीरिक दर्प तथा बल से

उत्पन्न होता है। सद्यः तत्पर तया पुनः काजर होने वाला अश्वराग रतिमात्र का इच्छुक होता है ॥ ३५ ॥

कृकलामाभिधानश्च स्त्रीणदर्शनचञ्चलः ।

मेपाख्यः शृङ्गकवलाभ्यासतुल्यरतिस्पृहः ॥ ३६ ॥

कृकलास (गिरगिट अथवा द्विपकली) नामक राग स्त्री-समूह के दर्शन मात्र से चञ्चल हो उठने वाला होता है। मेप नामक राग पास के पास खाने की स्पृहा के समान ही रति का भी इच्छुक होता है ॥ ३६ ॥

श्वाख्यो रत्यन्तनिमुखाः स्त्रीरहस्यप्रकाशकः ।

गार्दभः क्रूरसंमर्दवृत्तिमात्रपरायणः ॥ ३७ ॥

शुक्लुराग रति के अन्त में ही निमुखा होने वाला तथा स्त्री के एकान्त में होने वाले कान (समीप) का प्रकाराक (जहाँ तहाँ गली घाट में रति कार्य करके) होता है ॥ ३७ ॥

मार्जारजन्मा मातृत्यादत्यन्तनिकटस्थितिः ।

कौञ्जरः क्लेशान्वादिनिरपेक्षसमागमः ॥ ३८ ॥

निडालोत्पन्न राग निरन्तर के संपर्क से अत्यन्त निकट में ही रहने वाला होता है। हस्ति-राग बन्धन, बन्धन आदि से निरपेक्ष (भय रहित) होकर के स्त्री-समागम करता है ॥ ३८ ॥

शुक्राभिधोऽन्तर्निःस्नेहः कामं मुखमुखस्थितिः ।

हंमन्त्रः सुखस्थित्या गुणदोषनिमागकृत् ॥ ३९ ॥

शुक्र नामक राग भीतर से तो स्नेह शून्य किन्तु मुख से पर्याप्त सुन्दरवाक्य होता है। हंमन्त्रक राग अपनी सुगन्धपूर्ण स्थिति से गुण, और दोष का निमाग करनेवाला होता है ॥ ३९ ॥

पारायतार्यः मन्नेहरतिमर्षस्वलक्षणः ।

मायूरः स्वरगुणस्फीतरूपप्रमदवृत्तयान् ॥ ४० ॥

पारावत (कयूतर) संज्ञक राग प्रेम-परिपूर्ण संभोगके समग्र लक्षणों से संयुक्त होता है । मयूरसंवन्यो राग अपने शरीर के फैलाये गये रूप से, प्रमत्त होकर, नाचनेवाला होता है ॥ ४० ॥

बहुशः सुरतासङ्गमात्रार्थो चटकामिधः ।

कृकवाकुभवः कान्ताक्लेशक्लेशविभागवान् ॥ ४१ ॥

चटक (गोरैया) नामक राग बहुत अधिक सुरति-संयोग मात्र को ही चाहनेवाला होता है । कृकवाकु-संभव राग प्रिया के स्वल्पादि-स्वल्प क्लेश में भी हिस्मा बटाने वाला होता है ॥ ४१ ॥

कोकिलो मधुरालापः प्रभूतप्रसरत्कथः ।

जीवजीवकसंज्ञश्च परिचुम्बननिश्चलः ॥ ४२ ॥

कोकिलराग मधुरभाषी चर्चा का अतिविषय हुआ करता है । जीवजीवक (चक्रवाक) संज्ञक राग परिचुम्बन में निश्चल हुआ करता है ॥ ४२ ॥

केशाख्यः सप्तदिवसस्थायी कृच्छ्रानुरञ्जकः ।

अस्थिसंस्थोऽन्तरस्थश्च प्रच्छन्नस्नेहजीवितः ॥ ४३ ॥

केश-नामक राग सप्ताहान्त तक रहनेवाला एवं बड़ी कठिनाई से अनुरंजन करने वाला होता है । अस्थि (हड्डी) में रहनेवाला राग अन्तरस्थ तथा प्रच्छन्न स्नेह (चिकना घातुविशेष, अनुराग) से जीवित रहने वाला होता है ॥ ४३ ॥

नखामिख्यो मासमात्रस्थायी याति शूनैः शूनैः ।

प्राणिनामा प्रबुद्धोऽपि बट्टमुष्टेर्न लक्ष्यते ॥ ४४ ॥

नख-नामक राग, केवल एक मास तक रहने वाला होता है और यह धीरे-धीरे जाता है । प्राणि नामक राग प्रबुद्ध (प्रफट) होता हुआ भी लालची व्यक्ति को दिखलायी नहीं पड़ता ॥ ४४ ॥

दन्तामिधो यस्ताम्बूललीलामात्ररुचिः सदा ।

पादाख्यश्चरणालीनः प्रणामैरेव केवलम् ॥ ४५ ॥

जो दन्त-नामक राग है वह सर्वदा केवल ताम्बूल-चूर्ण में ही रुचि अथवा ताम्बूल-चूर्ण से ही रक्तिमा धारण करता है। चरण में पूर्णतः लीन रहने वाला पाद-संज्ञक राग केवल प्रणामों से ही सन्तुष्ट होता है ॥ ४५ ॥

तिलकप्रतिमो नीचस्योत्तमस्त्रीममागमः ।

कर्णपूरश्च कौटिल्यात्कर्णलग्नोऽतिकथनः ॥ ४६ ॥

तिलक-नामक राग तो नीच पुरुष का उत्तम स्त्री के साथ समा-गम है। कर्णपूर-नामक राग कुटिलता के कारण कान में लगने वाला तथा अत्यधिक धोलनेवाला (धकनादी) हुआ करता है ॥ ४६ ॥

मर्मत्रानुचरः शोषकारी छायाग्रहामिषः ।

अज्ञातचित्तः स्तब्धाख्यो भूतसंज्ञो विचेतनः ॥ ४७ ॥

छायामह नामक राग अथवा छायाराग सर्वत्र पीढ़े-पाढ़े चलने वाला तथा शोषण कर्त्ता होता है। स्तब्ध-नामवाला भूतसंज्ञक राग अपरिचितचित्तवाला तथा चेतना (विवेक) रहित होता है ॥ ४७ ॥

अपस्मरामिषः क्रूरकोपाक्षेपः क्षणे क्षणे ।

ग्रहो बलाञ्छनग्राही मज्जने विजने पथि ॥ ४८ ॥

अपस्मार-संज्ञक राग प्रतिक्षण भयङ्कर कोप (प्रकोप) के कारण आक्षेप (फेंकना-प्रक्षेपण) करनेवाला होता है। ग्रहराग-जनसंकुल अथवा जनरहित मार्ग में बलाञ्छन को पकड़नेवाला माना गया है ॥ ४८ ॥

गान्धर्वो गीतनृत्तादिरमसंसक्तमानसः ।

यश्च क्षिप्तो न निर्याति गृहानृत्तिविचक्षणः ॥ ४९ ॥

गान्धर्व राग गीत तथा नृत्त आदि के रस में मन को पूर्णतः संसक्त करनेवाला होता है। यश्च राग फेंकने पर भी नहीं निरुलता है और यह गृह में मुहुर्मुहुः आने में बहुत विचक्षण (बुद्धिशाली) होता है ॥ ४९ ॥

यत्तत्प्रलापमुखरः धोमाख्यस्त्यक्तयन्त्रणः ।

पैशाचश्चाशुचिरतस्तीव्रश्रुतविदारणः ॥ ५० ॥

क्षोम-नामक राग हृदय-विदारक पीड़ा का परिवाग करनेवाला तथा जो रुद्ध अर्थान् अनर्गल प्रलाप करनेवाला होता है। पिशाच-संबन्धी राग अपवित्र एवं तीव्र क्षत्र (नोचने-काटने से होने वाला घाव) से शरीर का विदारण करनेवाला होता है ॥ ५० ॥

कौसुमः क्षणिकोदारः पूजामात्रपरिग्रहः ।

भग्नोऽपि कौम्भः शकलदलेपे क्षिप्र इवेक्ष्यते ॥ ५१ ॥

कुसुम राग क्षणिक तथा उदार एवं सम्मान मात्र को स्वीकार करनेवाला होता है। कुम्भ राग भग्न हो जाने पर भी टुकड़ों के जोड़ देने पर जुड़ा हुआ सा दोख पड़ता है ॥ ५१ ॥

नारङ्गः सरसोऽप्यन्तर्बहिस्तीक्ष्णः कटुः परम् ।

बहुगर्भतया रूटो हृदये दाढिमाभिधः ॥ ५२ ॥

नारङ्ग (नारङ्गो-संबन्धी) राग भावर नरस होते हुए भी बाहर से अत्यधिक तोड़ण कटु होता है। दाडिम (अनार) नामक राग अपने भीतर ही भीतर गर्भरूप बहुत से बीजों को धारण करने के कारण प्रौढ अतः कठोर हुआ करता है ॥ ५२ ॥

क्षणक्षैद्योपमो माद्यः स्वस्यो वैलक्ष्यलक्षणः ।

धीमत्माचारवैरस्यात्कुप्राख्योऽतिजुगुप्सितः ॥ ५३ ॥

क्षण भर के लिये भक्तता की उपमा को धारण करनेवाला माद्य (मादक वस्तु संबन्धी) राग स्वस्य एवं अनिर्णय लक्षण वाला होता है। धीमत्स के आचार के कारण अर्थान् धीमत्स होने से विरक्त के कारण कुप्रा नामक राग अत्यधिक जुगुप्सापूर्ण होता है ॥ ५३ ॥

वैरूप्यं च समायाति च्छेदेनेवाद्गमर्मणाम् ।

चिताभिधानः सर्वाद्विदाही चक्ष्यप्रयोगजः ॥ ५४ ॥

रिसर्प (वैरूप्य) नामक राग में अङ्गों के मर्म स्थलों (अत्यधिक पीडादायक सन्धि, अस्थि आदि स्थलों) के काटने की सी पीडा एवं विरूपता होती है। बिता नाम से कड़ा जाने वाला राग समप्र अययों को जलाने वाला तथा वश्यप्रयोग (वशीकरण नामक प्रयोग) से उत्पन्न होता है ॥ ५४ ॥

भ्रामरः कौतुकास्वादमात्रो नवनवोन्मुखः ।

पातङ्गः कामिनीदीप्तिरमिकः क्षयनिर्भरः ॥ ५५ ॥

भ्रामर राग (भ्रमरसन्ध्या राग) कौतुकप्रसा आस्वाद मात्र करनेवाला तथा नवीन नवीन प्रिय वस्तुओं की ओर जानेराला (उन्मुख) होता है। पातङ्ग (पतङ्गसम्बन्धी) राग विनाशोन्मुख, एव कामिनी की कान्ति का रसिक (आस्वादक) होता है ॥ ५५ ॥

धृष्टिकारुण्यो व्यथादायी द्वेषोऽप्यत्यन्तनिश्चलः ।

त्यक्ताहारोऽतिसन्तापनष्टच्छायो ज्वराभिधः ॥ ५६ ॥

धृष्टिक (विच्छू) राग अत्यधिक पीडा देने वाला तथा अनभिमत होते हुये भी अत्यन्त निश्चल होता है। जर राग (घुस्सार राग) आहार का परित्याग करानेवाला एवं अति सन्ताप के कारण शारीरिक कान्ति का विनाशक कड़ा गया है ॥ ५६ ॥

भ्रमनामा मतिभ्रंशाद्यक्रान्ति इवाकुलः ।

स्मरणाख्यः प्रियस्मृत्या कृतान्धर्त्ताममागमः ॥ ५७ ॥

भ्रम नामक राग मतिभ्रंश (विस्मरण) के कारण चाक पर स्थित अतः आकुल की भाँति होता है। स्मरण नामक राग प्रिय के स्मरण से अथवा प्रिय स्मरण से अन्य स्त्री का सम्भोग करनेवाला अथवा करानेवाला होता है ॥ ५७ ॥

रतिग्रहः सदा स्वप्ने मंग्राप्तमुरतोत्तरः ।

रौधिरः कलहे रक्तपातैर्नीचस्य वर्धते ॥ ५८ ॥

रतिग्रह (रतिराग) सदा स्वप्न में स्त्री-सम्भोग से उत्पन्न

आनन्द को प्राप्त करनेवाला होता है। रधिर राग क्लह के समय नीच के रक्तपातों से बढ़नेवाला होता है ॥ ५८ ॥

इत्यशीतिः समासेन रागभेदाः प्रकीर्तिताः ।

विस्तरेण पुनस्तेषां कः संख्यां कर्तुमर्हति ॥ ५९ ॥

इस प्रकार सत्तेष मे नैने अस्ती प्रकार के राग के भेदों का वर्णन किया है। विस्तारपूर्वक राग के भेदों की संख्या भला कौन बतला सकता है? अर्थात् राग के भेदों की विस्तृत सरा बतलाना असम्भव है ॥ ५९ ॥

सुहृज्जनार्जनं कुर्यात्पूर्वं वारविलासिनी ।

वैश्यानां पद्मिनीनां च मित्रायत्ता विभूतयः ॥ ६० ॥

वारविलासिनी (वैश्या) को चाहिये कि वह पहले अपने लिये बहुत से मित्रों का अर्जन करे अर्थात् बहुत से मित्र बनावे; क्योंकि सुन्दरी वैश्याओं अथवा पद्मिनी (स्त्रियों का एकभेद) के लक्षण से सम्पन्न वैश्याओं की प्रचुर सम्पत्ति मित्रों के ही अधीन उसी प्रकार से रहती है जैसे कमलिनी की विभूतियाँ (विकास आदि शोभा) सूर्य के अधीन रहती हैं ॥ ६० ॥

सुहृद्भिरेव जानाति कामुकानां धनं गुणम् ।

हृदयग्रहणोपायं शीलं रक्तापरक्तताम् ॥ ६१ ॥

वैश्या अपने मित्रों के माध्यम से ही कामुक व्यक्तियों के धन, गुण, हृदय को वश में करने का उपाय, स्वभाव एवं अपने में अनुरक्ति तथा विरक्ति को जानती है। वैश्याओं के मित्र उनके व्यापार में बहुत सहायक सिद्ध होते हैं ॥ ६१ ॥

महाधनस्य सुहृदां कामिनां प्रेमशालिनाम् ।

प्रच्छन्नमुरतेनापि कुर्यादाराधनं सदा ॥ ६२ ॥

वैश्या को चाहिये कि वह अत्यधिक धनी व्यक्ति का एवं स्वभाव

प्रेमप्रवण कामी मित्रों का सुत्कार उनके साथ छिपे रूप से सम्भोग करके भी करे ॥ ६२ ॥

एको रिचनतः स्रुः पितृहीनः सुपौत्रने ।

मुग्धे भ्रुजि कायस्यः कामिस्पर्धी वणिक्सुतः ॥ ६३ ॥

धनी व्यक्ति का एकमात्र पुत्र (इकलोता बेटा), सुन्दर युवा-वस्था से सम्पन्न पितृ विहीन व्यक्ति, अथवा धनी व्यक्ति का, युवा-वस्था में पितृविहीन एकमात्र पुत्र, सौन्दर्य आदि पर मुग्ध राजा, अथवा शासक राजा के भोला भाला अतः शिथिल शासक होने पर, कायस्य, कामिजनों के साथ स्पर्धा करने वाला व्यापारी बनिये का पुत्र ॥ ६३ ॥

निष्पातुरामात्यवैद्यप्रमिदस्य गुरोः सुतः ।

..... प्रच्छन्नकामो जाड्य धनः ॥ ६४ ॥

सर्वादा रोगी रहनेवाले व्यक्ति, अमात्य, वैद्य तथा राजगुरु का लडका, समाज के व्यक्तियों की दृष्टि बचाकर चोरी चोरी बेर्यासम्भोग करनेवाले व्यक्ति, शठधनी (फजूस) ॥ ६४ ॥

नपुंसकप्रसादस्य प्रशमार्थी फलाशुनः ।

मत्तो धूर्तमहापथ राजपुत्रुर्निरदुःखः ॥ ६५ ॥

अपने विषय में नपुंसक होने के प्रसाद का प्रशमन करने की इच्छा वाला व्यक्ति, फलाहारी, मत्त, धूर्तों का मित्र, एक निरदुःख राजपुत्र ॥ ६५ ॥

ग्राम्यो घातद्विजसुतः प्राप्तलामञ्च गायनः ।

मयः सार्यपतिः प्राप्तः श्रीमान्दैवपरायणः ॥ ६६ ॥

ग्रामीण अर्थान् अलसभ्य, घाई एवं द्विज का पुत्र, पर्याप्त लाभ को प्राप्त किया हुआ गायक, तत्काल प्राप्त सार्यपति (गणपति), सम्पत्ति-शाली भाग्यवादी ॥ ६६ ॥

गतानुगतिको मूर्खः शास्त्रोन्मादश्च पण्डितः ।

नित्यक्षीयश्च वेश्यानां जङ्गमाः कल्पपादपाः ॥ ६७ ॥

गतानुगतिक अर्थात् अन्वानुकरण करनेवाला मूर्ख, शास्त्रोन्मादी (शास्त्रप्रवीण होते हुये भी व्यवहार से अनभिज्ञ) पण्डित, मदिरा के पान से सर्वदा मत्त रहने वाला—ये सभी वेश्याओं के लिये चलने-फिरने वाले कल्पतरु माने गये हैं ॥ ६७ ॥

प्रथमं प्रार्थिता वेश्या न क्षणोऽस्तीत्युदाहरेत् ।

जनस्यायं स्वभावो हि सुलभामवमन्यते ॥ ६८ ॥

वेश्या को चाहिये कि वह सर्वप्रथम, लोगों के द्वारा सम्भोग-याचना करने पर, “मेरे पास खाली समय नहीं है” ऐसा कहे। क्योंकि लोगों का यह स्वभाव होता है कि वे सुलभ-आसानी से प्राप्त-स्त्री की अवमानना करते हैं ॥ ६८ ॥

शिरःशूलादिकं व्याधिमनित्यमजुगुप्सितम् ।

अग्रहारोपयोगाय पूर्वमेव ममादिशेत् ॥ ६९ ॥

सम्भोग न करने के हेतु बहाना बनाने के लिये वेश्या को पहले ही शिर की पीड़ा जैसी सामान्यतः सबको होने वाली व्याधियों को बतलाना चाहिये; किन्तु यहाँ यह स्मरण रखना चाहिये कि ये व्याधियाँ ऐसी न बतलाई जायँ जिनके सुनने से लोगों को घृणा हो ॥ ६९ ॥

पत्नीव कुर्यादनुवृत्तिपूर्वं पूर्वं महार्यस्य वरोपचारम् ।

द्रव्यैस्त्वया मन्त्रजपादिभिर्वा वर्गीकृतास्मीति वदेच्चर्मम् ॥ ७० ॥

वेश्या को चाहिये कि वह, सर्वप्रथम, महाशय की व्यक्ति का पत्रों की भाँति चित्त का अनुवर्तन करती हुई पर्याप्त स्वागत सत्कार करे और उससे कहे कि “घन अथवा वशीकरण आदि के प्रयोगों से आपने मुझे अपने वश में कर लिया है।” इसी प्रकार की और बहुत सी बातें उसे कहनी चाहिये ॥ ७० ॥

स्वयं प्रदत्तेऽपि नखवते च शङ्केत तद्भक्तिविनादशीलम् ।

निन्देत्प्रकामं जननीं विरुद्धां गच्छेत्स्वयं वेदम च कामुकस्य ॥ ७१ ॥

वेरया की स्वविगमिणी भक्ति के नियम ने विनाशशील (तुम हृदय से जुने नहीं चाहती, तुम्हारी मुक्त ने सभी भक्ति नहीं है आदि क-कर विवाद करने बाने) अथवा अपनी वेरयासम्बन्धिनी भक्ति के नियम ने विवाद करने बाने (प्रेम पर शङ्का करने वाली वेरया से "मैं तुम्हारा अन्यन्य भक्त हूँ" अदि कहने बाने) घनी व्यक्ति के शरीर पर स्वयं अपने द्वारा चिने गये नखभूत पर भी वेरया को शङ्का करनी चाहिये । कष्टपूर्वक विरुद्ध की भाँति आचरण करने वाली माता की तुम निन्दा करनी चाहिये (जैसे—यह बुद्धिया एकमात्र आप के ही ऊपर मेरे प्रगाढ़ प्रेम को देखकर जलती है अतः मेरे पास जाने के लिये आप के समय देने में आनाचना करती है) और कभी कभी स्वयं ही उस कामुक के घर वेरया को चली जाना चाहिये ॥ ७१ ॥

विदेशयात्रामपि मन्त्रयेत् तत्रैव साधं विहितानुसंध्या ।

सुमन्य कुर्यात्परिचुम्बनं च गुणन्तुति चार्थविवोधमात्रः ॥ ७२ ॥

धनिक कामुक के साथ अपने हृदयर सम्पर्क को बसाने रखने वाली युवती वेरया उमी के ही साथ विदेश यात्रा की भी मन्त्रणा करे । से जाने पर इसका चुम्बन करे और जब वह अर्द्ध निद्रा की अवस्था में रहे तब उसके गुणों की प्रशंसा करे ॥ ७२ ॥

स्वप्ने मर्दनं प्रलपेन्मरागं मयं च तन्नामनिद्राभेदः ।

न चान्य वृत्तिं सुतेषु गच्छेद्द्वयस्य कुर्यात् मुहुर्निषेधम् ॥ ७३ ॥

स्वप्न में भी मर्दा उमटे (कामुक के) नाम के साथ अर्थात् उनके नाम के ले ले कर के अनुरागपूर्ण सब कुछ प्रलाप (स्वन-शब्द) करे—जैसे—हे गुणनिधि जी ! (व्यक्ति का ज्ञान) आप मुक्त अभागिन को अच्छी छोड़ कर कहाँ जा रहे हैं ? आप के बिना मेरा जीना असम्भव है । आदि आदि । इसके (घनी कामुक के) साथ सम्मोग की तुनि की कभी न ग्रन्थ करे—सम्मोग की परिमर्मानि पर

उससे कहे कि मैं तो आप के साथ सम्भोग में अपार आनन्द का अनुभव करती हूँ। मेरी इच्छा सर्वदा आप के साथ रमण की होती है और जब वह उस वेश्या को द्रव्य आदि देने लगे तो उसका भी निषेध करे ॥ ७३ ॥

टिप्पणी—यहाँ यह स्मरणीय है कि वेश्या उस सब धन सचाई के साथ न कर बनाबदी रूप से ही करती है। किन्तु धमागा कामुक इन सब बातों से सम्य मान कर अपना सब धन उसे दे देता है।

तस्माच्च पुत्रार्थमनोरथा स्यात्प्राणात्ययं तद्विरहे वदेच्च ।

इत्यादिभिः स्वीकरणाद्युपायैर्निबद्धबुद्धेर्द्रविणं लभेत् ॥ ७४ ॥

उससे (धनी कामुक से) वह (वेश्या) पुत्रोत्पत्ति की कामना करे और उसके विरह में अपने प्राणों के परित्याग की भी बात कहे। इन्हीं सब वरा में करने के उपायों से अत्यधिक आसक्त कामुक के द्रव्य को प्राप्त करे ॥ ७४ ॥

तावच्च तूर्णं धनमाहरेत् यावत्स रागेण विनष्टसंज्ञः ।

प्रशान्तरागानलशीतलस्तु स लोहपिण्डीकठिनत्वमेति ॥ ७५ ॥

वेश्या को चाहिये कि वह अति शीघ्र कामान्ध अतः बुद्धिभ्रष्ट कामुक के सब धन का हरण कर ले। अन्यथा वह (कामुक) कान-जनित रागानल के प्रशान्त होने पर पहुँचे अग्नि के ताप से कोमल और बाद में—अग्नि के प्रशान्त हो जाने पर—कठोर लौह पिण्ड की भाँति कठिनता (अति कंजूसी) को प्राप्त हो जायगा ॥ ७५ ॥

याचेत् सर्वं सुरतार्तिकाले तमूर्खन्धेन निरुद्धकायम् ।

प्रायेण वृत्ताय न रोचते हि विनम्रशाखापरिपक्वमाग्नम् ॥ ७६ ॥

सुरत के समय क्रम के बढ़ने पर आनन्द के काल में अपनी जंघाओं की पकड़ से कामुक के शरीर को निरुद्ध करके उनसे सब बुद्ध माँगना चाहिये। अन्यथा सुरत से परितृप्त अतः काम-विरत व्यक्ति से यथेन्द्र धन निकाल पाना कठिन होता है; क्योंकि परितृप्त व्यक्ति

को झुकी हुई शाखा के पर्याप्त पके हुये आम भी प्रायः अच्छे नहीं लगते ॥ ७६ ॥

मंधारयेत्तं च विशेषपित्तं यावन्न निःशेषघनत्वमेति ।

पुनः पुनः स्नेहलवार्द्रवक्त्रा दीपं यथा दीपकदीपवर्तिः ॥ ७७ ॥

जिस प्रकार पुनः पुनः तैलकण से सिक्त मुख वाली दीपक की वत्ती दीपक को धारण किये रहती है—प्रकाश के योग्य बनाये रखती है; वसी प्रकार प्रेमलव से प्रमत्त मुखवाली चेरया को भी विशिष्ट घनी व्यक्ति को तब तक बारम्बार अङ्गीकार किये रहना चाहिये जबतक कि वह पूर्ण निर्धन नहीं हो जाता ॥ ७७ ॥

निष्पीतसारं विरतोपकारं क्षुण्णेभ्यस्तत्कप्रतिमं त्यजेत्तम् ।

लब्धाधिवासक्षयकारिशुष्कं पुष्पं त्यजत्येव हि केशपाशः ॥ ७८ ॥

मारुत सम्पूर्ण घन के भक्षण कर लेने से उपकार करने में असमर्थ अतः मरीन अथवा मुख के द्वारा चूमी गयी ईश की खोई के समान निस्त्वत्त्व कामुक का त्याग कर देना चाहिये। स्त्रियों का केशपाश (जूटा) अपने ऊपर लगे हुए पुष्प का वक्ष समय परित्याग ही कर देता है जब कि वह मुरझा कर शुष्क हो जाता है ॥ ७८ ॥

हेमन्तमार्जार इवातिलीनः स चेन्न निर्याति निरस्पमानः ।

तदेष कार्यस्तनुमर्मभेदी प्रवर्धमानः पक्षोपचारः ॥ ७९ ॥

यदि वह कामुक तिरस्कारपूर्वक निकालने पर भी, हेमन्त काल में घर के अन्दर चून्दी में अत्यन्त तन्मयता के साथ स्थित बिडाल की भाँति, नहीं निरुन्मत्ता है; तब उसके माथ अत्यन्त वीक्षण, मर्मस्थल का निशारक, कठोर व्यंग्यार करना चाहिये। ये व्यंग्यार आगे क्रमशः बढ़ताये जा रहे हैं ॥ ७९ ॥

शुष्यावहारैर्वचनप्रहारैः कोपप्रकारैर्वननीरिकारैः ।

कौटिल्यसारैर्विविधप्रसारैर्विपदिचारैर्गणितापचारैः ॥ ८० ॥

उस कामुक के साथ शैया पर शयन के परित्याग से, कठोर वचनों के प्रहार से, कोप करने से, माता (कृष्टिनी) के क्रोध आदि से, कृष्टिलतापूर्ण विविध प्रकार की विषयियों के विचार के अर्थान् विषय-
त्तियों को ले आकर के, अनुचित व्यवहारों को गिना करके; ॥ ८० ॥

याञ्जाविवादैरधनापवादैर्दत्तानुवादैः परसाधुवादैः ।

निन्दाप्रवादैः परुषप्रवादैर्विदप्रवादैः कथिताप्रवादैः ॥ ८१ ॥

याचना के विवाद से ('मुझे अनुक वस्तु दीजिये' ऐसा करने के अनन्तर झगडा करके), निर्धन व्यक्तियों के लिये प्रयुक्त दुर्धवनों से, अन्य व्यक्ति के द्वारा प्रदत्त वस्तु के कथन से, अन्य लोगों से लिये प्रदत्त धन्यवादों से, निन्दा पूर्ण वचनों से, हृदय को विद्व करने वाले वाक्यों से, विदों के प्रवादों से, कष्ट के वचनों से; ॥ ८१ ॥

मुहुः प्रवामैः कलहोपवामैर्मोयानिवामैः कटुकाधिवासैः ।

सभ्रविलामैर्व्यमनोपवामैर्निष्कासनीयैः म पृथुप्रवासैः ॥ ८२ ॥

विदेश गमनों से, कलहपूर्वक उपवासों से, कष्टपूर्वक इतस्ततः निवास करने से, कामुक के अप्रिय व्यक्तियों को घर में रखने से, भौंहों को घमका घमका करके अर्थान् भौंहों से इक्षितपूर्वक मद्य आदि के सेवन अथवा क्रीडा आदि, तथा उपवासों से, दीर्घोपधिक प्रवासों से निर्धन कामुकों को निकाल देना चाहिये ॥ ८२ ॥

स चेत्पुनरागजतुप्रमत्तस्तीव्रावमानरपि न प्रयाति ।

तदा तद्विषयभुजान्यवक्त्रा दामी वदेद्विचित्रवियोगदीनम् ॥ ८३ ॥

यदि चेन् पुनः रागरूपी लाह से अचन्त आसक्त वह कामुक तीव्र अपमान करने पर भी नहीं जाता है, तब विचित्र के अभाव से दीन उस व्यक्ति से हाथ को उठा करके और दूसरी ओर नुह करके दामी कहे :—॥ ८३ ॥

यत्राभवत्कामुकलोक्रयात्रा विचित्ररूपा सततं विभृतिः ।

गृहे चतुर्थं दिनमथ तस्मिन्दृश्य दृश्य वृत्तवस्य ॥ ८४ ॥

जहाँ पर कामुक व्यक्तियों की विभिन्न एवं विचित्र रूपवाली, सर्वदा सम्पत्ति से परिपूर्ण लोकयात्रा (व्यवहार-निर्वाह एवं आना-जाना) हुआ करती थी, वेश्याओं के उन घरों में सौभाग्यसे पूर्ण वधून्सव (स्त्रियों के द्वारा मनाया जानेवाला एक त्यौहार) का आज चौथा दिन है ॥ ८४ ॥

ह्रीयस्य यस्यास्ति न भोगमंपत्स किं भुजिष्याभवने करोति ।

न यस्य हस्ते तरमूल्यमस्ति स किं समारोहति नावमग्रे ॥ ८५ ॥

जिस नपुंसक के पास सम्भोग के लिये धन नहीं है वह वेश्या के घर में भला क्या करता है ? जिस व्यक्ति के हाथ में उत्तराई का पैसा नहीं है, क्या यह नाच पर, पार होने के लिए चढ़ता है ? ॥ ८५ ॥

प्रक्षीणवित्तेन निरुद्यमेन किं रूपयुक्तेन करोति वेश्या ।

विच्छिन्नदुग्धा न पुनः सगर्भा सा कस्य गौश्चारुतयोपयुक्ता ॥ ८६ ॥

सौन्दर्ययुक्त, निर्धन तथापि निरुद्यम व्यक्ति से वेश्या क्या करती है ? दुग्धरहित और पुनः गर्भरती न हुई गौ भला किस व्यक्ति के लिये भले काम की उपयोगी वस्तु है ? ॥ ८६ ॥

मिथ्यैव रिक्तः कुरुते जडानामावर्जनं प्रेममयैर्वचोभिः ।

धीरक्षये चुम्बनलालनेन बालस्य वृद्धिं विदधाति धात्री ॥ ८७ ॥

धन रिहीन व्यक्ति व्यय में ही प्रेम-परिपूर्ण वचनों से जड़व्यक्तियों का आवर्जन (सिपारिस, मनोरञ्जन) करता है । दूध के समान हो जाने पर धात्री चुम्बन एवं लालन-दुलार-में ही बालक को बढ़ाती है—बढ़ाती है । धात्री (धाई) स्तन के दुग्ध क्षोण हो जाने पर चुम्बन एवं दुलार के द्वारा बालक की वृद्धि को करती है ॥ ८७ ॥

इत्यादिभिस्तद्वचनायमानस्तस्मिन्नाते ग्रीष्मतुषारतुल्ये ।

क्षीणं निरस्तं पुनराप्तचित्तं भजेत यनाहृतवित्तमन्यम् ॥ ८८ ॥

इस प्रकार के अपमानपूर्ण वचनों में निरस्त, ग्रीष्मतुषार के जाड़ा के समान अहितकर उस कामुक के चले जाने पर, वेश्या को

चाहिये कि वह पहले निर्धन होने के कारण निकलने गये और पुनः धनी हुये व्यक्ति को तथा उद्योगपूर्वक धन इकट्ठा करनेवाले अन्य व्यक्ति को भी अङ्गीकार करे ॥ ८८ ॥

प्राप्ते कान्ते कथमपि घनादानपात्रे च वित्ते

त्वं मे सर्वं त्वमसि हृदयं जीवितं च न्वमेव ।

इत्युक्त्वा तं क्षपितविभवं कञ्चुकामं भुजंगी

त्यक्त्वा गच्छेत्समधनमपरं वैशिकोऽयं ममासः ॥ ८९ ॥

किसी प्रकार मे धन ग्रहण करने के पात्र अर्थात् जिनसे धन लिया जा सके ऐसे कान्त पुरुषके प्राप्त होने पर “तुम ही हमारे हृदय हो, तुम ही हमारे प्राण हो और तुम ही हमारे सब कुछ हो” ऐसा कहकर धन प्राप्त करके कञ्चुकाम (केचुल-वृक्ष अर्थात् निरर्थक) व्यक्ति को भुजङ्गी (वेरया) उसी प्रकार से छोड़ करके अन्य धनी व्यक्ति का सेवन करे जैसे मर्पिणी बिना कित्ती मोह के अपने केचुल को छोड़ देती है । यही वेरयाओं की पद्धति है ॥ ८९ ॥

उद्देशलेशेन यदेतदुक्तं तत्कार्यकाले विविधप्रयोगम् ।

तस्मात्स्वबुद्ध्या विचार्य कार्यमुक्त्येति तूष्णीं जरती चकार ॥ ९० ॥

इति श्रीक्षेमेन्द्रविरचितायां समयमावृत्तायां रागविभागोपन्यासो नाम पञ्चमः समयः

संक्षेप में यह जो उद्घ कथा गया है कार्य के समय विविध प्रकार से प्रयोगार्ह है । इसलिये अननो बुद्धि ने विचार करके करना चाहिये ऐसा कहकर वह पृक्षा बुद्धिनी चुप हो गई ॥ ९० ॥

श्री क्षेमेन्द्र के द्वारा विरचित समय मावृत्ता या ‘रागविभागोपन्यास’ नामक पञ्चम समय समाप्त हुआ ।



पष्ठः समयः

अथ क्षणक्षीणधनायमाने शूनः शूनैर्निष्प्रतिभे शशाङ्के ।

द्यौर्दोषयुक्तव तिलोक्तनेन सविष्टया मीलितताम्रकाभृत् ॥ १ ॥

इसके अनन्तर स्वप्नकाल के लिये सामान्यरूप में समृद्ध हुये अथवा ब्राह्म मुहूर्त की पुण्यवेला में चन्द्रिकारूपीधन के क्षयगले चन्द्र के धीरे धीरे कान्तिहीन हो जाने पर, परिवर्तनशीला द्यौ (आकाश) वसी प्रकार से, देखने मात्र में ही, नक्षत्रशून्य हो गई जैसे अपराध करनेवाली अत अशान्त अन्त करणशाली स्त्री लोगों के देखनेमात्र से ही अपनी आँखों को चन्द कर लेती है ॥ १ ॥

इन्द्रा प्रयाते कृतरात्रिमोगे प्रवेशकाले चिरकामुकस्य ।

वेदयेत् मध्या गगनाङ्गनाग्रं निर्दिष्टताराकुसुमं चकार ॥ २ ॥

रात्रिरूपी नायिका का सम्मोग कर चुकनेवाले चन्द्र के अस्त हो जाने पर, रात्रिपर्यन्त वेदया का सम्मोग करनेगले कामुक के घने जानेपर तथा चिरकामुक (जिसने उत्पृष्ठा के कारण रात्रि भर अपनी पारी की प्रतीक्षा की है) के वेदया के घर में प्रवेश का समय, होने पर, वेदया की भाँति सन्ध्या ने द्यौरूपी स्त्री के सम्मुख कुछ इने गिने तारारूपीकुसुमों को धारण किया ॥ २ ॥

अयोदिते स्थितितदानदक्षे ताले रगां श्रीमति पङ्कजिन्याः ।

विक्रामकाले मधुपानकेलिरभूद्विटानामिव पद्मदानाम् ॥ ३ ॥

इसके बाद, अपनी स्थिति से प्राणियों के जीवनदान देने में दक्ष, प्रभासरलित, बाल सूर्य के उदित होने पर कमलिनी के विक्रामकाल में, विटा की भाँति, भ्रमरों का मधुपान (मदिरापान, पुष्परसपान) का उत्सव हुआ ॥ ३ ॥

कनारती मीत्तिकभूषणाङ्गा धम्पिष्ठमाल्यप्रणयप्रमर्तः ।

भृङ्गैर्दृता दर्पणमीशमाणा मतारका चन्द्रवती निशेत् ॥ ४ ॥

स्मराङ्गनावेलिशुकायमानरस्थतामूलविलासपूर्णा ।

समावृता नापितदत्तहस्ता कान्तां तनुं पण्यदृशां नयन्ती ॥ ५ ॥

सलीलमात्रान्तिविलोकाञ्चीरवेण पारानतदत्तमञ्जा ।

अर्थार्थिनी राजपथप्रकारं हर्म्यं त्रियोत्सङ्गमित्रास्त्रोह ॥ ६ ॥

स्वनों के नीचे रुक लटकती हुई मोती का माला को धारण करनेवाली, केशपाश (जूड़ा) में गुथी हुई माला की सुगन्धि ने आकृष्ट भ्रमरों से घिरी हुई, दर्पण को देखती हुई, माल में बिन्दु लगाने के कारण चन्द्रमा से उद्भासित रात्रि की शोभा को धारण करने वाली; काम क्रीड़ा अथवा रति क्रीड़ा में शुरु की भाँति आचरण करने-वाले अर्थात् कामोद्दीपक, हाथ में लिये गये पान के विलास से पूर्ण, अपनी नवागत माता को साथ लिये, नापित के हाथ में हाथ मिलाये, अपनी नलानी शरीर को द्रव्य से ररीदने के योग्य अवस्था को प्राप्त कराती हुई, विलास (नाज नररा) पूर्वक सीढ़ी पर चढ़ने से हिलनेवाली करघनी के शब्द से गृह-क्यूतों को अपने आगमन का संकेत देती हुई, घन को चाहनेवाली, कलावती ने राजमार्ग के किनारे स्थित अपने पक्के महल की छत पर, प्रियतम की गोदी की भाँति, चढ़ी ॥ ४-६ ॥

तामश्रीत्तत्परिभोगयोग्यं प्रातर्नरं कामुदमीक्षमाणः ।

विलोक्य वङ्गः शयनोत्थितानां पण्याङ्गनानां गणयन्विचेष्टाः ॥ ७ ॥

कलावती के सम्भोग के योग्य, प्रातःकाल, नवीन कामुक को देखता हुआ, इधर उधर देखकर, शयन से उठो हुई, वारवनिताओं की विविध चेष्टाओं का आकलन करते हुये 'वङ्ग' नामक नापित ने कलावती से कहा ॥ ७ ॥

आसन्नमित्रागममुच्यमानममागमे तामररुहभूम्य ।

निर्यान्ति टीपा इतरात्रिमोऽन्याः पश्य प्रभाते गणिकागृहेभ्यः ॥ ८ ॥

देखो दिनमणि सूर्य के उदित जाने पर निप्रभ न कर चुम्बने जाने दीपकों की भाँति, आसन्न मित्रों के आगमन के कारण सटवास की परिसमाप्ति पर रात्रि में चेरयाओं के सम्मोग्य कामुकवन, प्रातःकाल के होने पर, गणिकाओं के गृहों से निकल कर जा रहे हैं ॥ ८ ॥

एष प्रजुद्धः सहसा जटामृल्लीलाशिनः कुम्कुटकृजितेन ।

गृहान्नलिन्याः परिहृत्य राजरथ्यां कृपाग्रेण मठं प्रयाति ॥ ९ ॥

मुर्गों के चोत्तने से सहसा जटा हुआ अथवा प्रातःकाल के विषय में नयेत हुआ, जटाघारी, 'लोलाशिन' नामक मठाधिपति 'नलिनी' चेरया के घर से निकलकर "चरया के घर से आने हुए मुझे लाग देख न लें" इस विचार से राजमार्ग का छाड़कर कुमार्ग से—बगल की गली से—अपने मठ को जा रहा है ॥ ९ ॥

टिप्पणी—यहाँ पर कवि ने कुमार्ग शब्द का प्रयोग कर मठाधिपति के पयत्रय गेन का झोर गहने किया है ।

एते निधेर्निग्रहमदृक्चनोः पृष्टा पिटा रात्रिसुप्तं प्रभाते ।

कतुं प्रवृत्ताः पृथुभोज्यभूरिव्ययाय भद्राभरने विभागम् ॥ १० ॥

प्रातःकाल 'निग्रहमदृ' ने पुर अथवा सोतवाल के पुर 'निधि' के द्वारा रात्रि के सुख, आनन्द के विषय में पूछे गये रिट जन, 'भद्रा' चेरया के घर में, विषय भोजन में पर्याप्त व्यय होनेशाने द्रव्य को परस्पर बाँटने में मलग्न हैं ॥ १० ॥

प्राप्ते गृहद्वारमनङ्गमारे महागिटे पदय वमन्तसेना ।

शून्यप्रनुभापि पुरः भमेत्य निशीथभोगं रुधयत्यमत्थम् ॥ ११ ॥

देखो, वान से मन्त्रांत मन्त्राटि (प्रसिद्ध बन्तली कानुक) के घर के चरवाने पर आने के अनन्तर अगवानी करती हुई वसन्तसेना (चेरया का नाम) रात्रि भर यङ्गली एकान्त में मर्द रहने पर भी पृष्ठ पालती हुई अवन रात्रि के सम्मोग का वसन कर रही है ॥ ११ ॥

टिप्पणी—यह मनोवैज्ञानिक बात है कि जिस स्त्री के पास बहुत से व्यक्ति आते जाते हैं, उसको अन्ध लोग भी चाहते हैं और जिसके पास कोई भी नहीं जाता उसमें अन्य नवागन्तुक अथवा परिमित लोग भी प्रेम नहीं दिखलाने। यही कारण है कि बसन्तसेना गृहे ही अपने रात्रि-सम्भोग का बात कह रही है।

भग्राङ्गदा प्रोटितकर्णपाली मतङ्गनाम्ना गणपालनेन ।

आत्मापराधं त्रिनिगूहमाना त्रिरौति रामा जननीजनाग्रे ॥ ११ ॥

रतिकेलि के कलह में, हाथी की भाँति मतवाले 'मतङ्ग' नामक गणपाल के द्वारा अङ्गद (बाजू धम्) के भग्न हो जानेपर तथा कर्णा भूषण (कान की बाली) के टूट जाने पर अपने अपराध को छिपानी हुई 'रामा' बेश्या अपनी माताओं (इष्टिनियों) के सामने प्रलाप कर रही है ॥ १२ ॥

निर्गच्छतो ग्रामनियोगिनोऽस्य ददाति गुप्तस्य समेत्य पश्चात् ।

इदं तथेदं च पुरः प्रहेयमित्यादि संदेशशतानि ब्रूया ॥ १३ ॥

घर से निकलनेवाले ग्राम के अध्यक्ष इस 'गुप्त' का पीछे से आकर "यह और यह बात आगे छाड़ देनी चाहिये" इत्यादि सैकड़ों संदेशों को ब्रूया (ब्रूया) दे रही है ॥ १३ ॥

मंप्रस्थितेयं सह माधनेन कोशं युगं पातुमनङ्गलेखा ।

अग्रे पदस्या मधुबुम्भराही मेवं निरुपैर्न्युत्पः प्रयाति ॥ १४ ॥

निश्चय ही यह 'अनङ्गलेखा' मदिरा के पुरवा (कप) को पीने के लिये 'माधन' के साथ जा रही है। क्योंकि इसने आगे मदिरा के घट को लिये हुये भेंडा को खींचता हुआ एक पुरुष सेवन चल रहा है ॥ १४ ॥

टक्कस्य सा चलितस्य निप्राययत्स्सन्दरदानमाले ।

प्रसाधनाय स्वयमेव गन्तुं ममुद्यता पश्य शशाङ्गलेखा ॥ १५ ॥

देखो, ब्राह्मण के लिये मुद्रा-दान करने में द्रव्य सैनिक (मेनाविपति) के साथ सम्मोह के लिये निर्धारित ममय के पूर्व 'शराङ्कनेत्या' स्वयं ही अपना प्रमाणन (मेकजप) करने के हेतु जाने के लिये समुद्यत है ॥ १५ ॥

उद्यानलीलागमने निशायां सुनिश्चिते मल्लिकयार्जुनस्य ।

कृतः प्रभाते नवर्चानवम्बदानं विना पश्य मुहूर्तविनः ॥ १६ ॥

देखो, रात्रि में 'मल्लिका' के साथ 'अर्जुन' के उद्यानविहार में जाने के निश्चित हो जाने पर प्रातःकाल नवीन सिन्धुवस्त्र के न देने से मुहूर्त का निरुद्ध ही किया गया है ॥ १६ ॥

टिप्पणी—पहले प्रभा के अनुसार यों भी व्यक्ति जब किसी वस्त्र को उद्यान के लिये टंक करता था तब वह हम वस्त्र को प्रातःकाल ही, जब की उद्यान के लिये का निर्धारण होता था, एक सिन्धु वस्त्र मंड करता था । इससे बाद पक्षी मार्ग जाती थी ।

मेपप्रदस्पेन्द्रवमोद्विजस्य मुक्त्वा प्रभूतं निशि कालखण्डम् ।

विपुचिकार्ता विटहर्षहेतुर्नेयार्थिनी ध्वनति कुटुनीयम् ॥ १७ ॥

रात्रि में, मेंडा देनेवाले 'इन्द्रवसु' द्विज के द्वारा प्रदत्त मेप (मेंडा) के कलेजा को बहुत अधिक मात्रा में खाकर के परिणाम-स्वरूप हैजा से पीड़ित, विटों के हर्ष का कारण (विट लोग उसे हैजा में पीड़ित देखकर प्रसन्न हो रहे हैं) यह कुटुनी वेश को बुलाये जाने के लिये चिल्ला रही है ॥ १७ ॥

वैद्योऽन्यमौ मण्डलगुन्मनामा प्रमातृचारो नगरात्रितानि ।

समुद्यतः पूगच्छानि दातुं कुरङ्गिकार्यं निजमुष्टिपूर्गः ॥ १८ ॥

प्रातःकाल पर्यटन करनेवाला 'मण्डलगुन्म' नामक यह वैद्य भी नगर में शान छिड़े गये पूगच्छानों (सुगन्धी) को अपनी मुष्टियों में भर भर के 'कुरङ्गिका' को देने के लिये उत्पन्न है ॥ १८ ॥

कक्षालनाम्ना निशि गायनेन वारावहाराभिश्मश्रमाण्डा ।

गृह्णाति का नो चरणस्पृशोऽस्य वरांशुकं कुण्डघटादिमूल्यात् ॥ १९ ॥

‘कक्षाल’ नामक रात्रि के गायक के द्वारा भीड़ बचाते समय अथवा हास्य से मदिरा पीने के पात्र को चुराते समय भाण्ड के फूट जाने पर यह कौन बेश्या है, जो चरण पकड़नेवाले इस गायक के बहुमूल्य वस्त्र का कुण्ड और घट के मूल्य के रूप में नहीं ले रही है ? ॥ १९ ॥

प्राप्तस्य शंभोर्गणिजस्तु वारे सुप्तस्य शून्ये शयने निशायाम् ।

नन्दा समेत्यापरकामिगेहत्सविप्रलम्भं शपथं करोति ॥ २० ॥

सोमवार के दिन अथवा अपने लिये निर्धारित समय में आये हुये ‘शनु’ नामक बणिक के शून्य शयन पर रात्रि में सो जाने पर ‘नन्दा’ बेश्या दूसरे कामुक के घर से आकर के उसके सामने कपट पुरक, अन्य किसी के साथ समोग न करने के लिये शपथ खा रही है ॥ २० ॥

पितुर्गृहाङ्गुरिविभूषणानि प्राप्तं गृहीत्वा मदनं मृणाली ।

निगूह्य संदर्शयति स्वगेहं शून्यं तमन्विष्टमुपागतानाम् ॥ २१ ॥

‘मृणाली’ पिता के घर से बहुत से आभूषणों का लेकर आये हुये ‘मदन’ से आभूषणादि लेकर और उसे (मदन को) छिपा कर उसको (मदन को) राजने के लिये आये हुये लोगों को अपना शूना घर दिखला रही है ॥ २१ ॥

भोज्यं विना पाटलिका प्रविष्टं मुष्टिप्रदं श्रोत्रियमग्निगत्रम् ।

शुष्कान्नदाता पितृकार्यमेतत्किं किं करोषीत्यमद्ब्रवीति ॥ २२ ॥

‘पाटलिका’ भोज्य (दिया का समोग शुष्क) अथवा भोजन सामग्री को बिना लिये ही घर में आये हुये तथा मुट्ठी भर अन्न देनेवाले यात्रिक ‘अत्रिरात्र’ से बारम्बार पूछ रही है कि—क्या यह पितृकार्य (दाद) है ? यह आप क्या कर रहे हैं ? ॥ २२ ॥

मार्जारजिह्वा जननी हरिण्याः पद्मस्य भोज्यं निशिलुण्ठितं यत ।

तस्मिन्गते तद्विजने विशङ्का पश्य प्रभाते कलीकरोति ॥ २३ ॥

देखो, 'हरिणो' की, जिह्वा की भाँति लम्बी एवं चटोर जीभवाली "मार्जार-जिह्वा" नामक माता (कुट्टिनी) रात्रि में 'पद्म' से छीने गये भोजन को उसके चले जाने पर एकान्त में निःशङ्क होकर, प्रातःकाल, खा रही है ॥ २३ ॥

ईर्ष्याविशेषात्कृतकोपवादसंमूर्च्छितायां मलयं रमण्याम् ।

विभूषणं तोषणमाशु किञ्चिदस्यै प्रयच्छेति वदन्ति सरूपः ॥ २४ ॥

ईर्ष्या विशेष के कारण किये गये कोप से रमणी के मूर्च्छित हो जाने पर 'इसके शरीर पर मलय चन्दन और अतिशीघ्र शीतलता प्रदान करने वाला कोई विभूषण (मुक्तामाला, चन्द्रमणि आदि) लगाओ" इस प्रकार सचियाँ कह रही हैं ॥ २४ ॥

टिप्पणी—शरीर पर शीतल वस्त्र के रतने से क्रोध भी उगता कम हो जाती है और मूर्च्छित स्थिति चेतना में लौट आता है ।

रागेन कृष्णीकृतकेश एव वलीविशेषस्फुटवृद्धभायः ।

योगागृहं शम्बरसारनामा यागाय युग्येन गुरुः प्रयाति ॥ २५ ॥

राग (विजाम आदि बाल को काला करनेवाले पदार्थ; स्त्री-विषयिणी आसक्ति) से अपने श्वेत केशों को काला करनेवाले, वली-विशेष (शरीर पर पड़ी झुर्रियों) से स्पष्टरूप से वृद्ध प्रतीत होनेवाले 'शम्बरसार' नामक गुरु याग के लिये युग्य (योग्य) से यागागृह को जा रहे हैं ॥ २५ ॥

अयं जनस्थानविनाशहेतुः केतुः सरकूरतया प्रसिद्धः ।

आस्थानभट्टशिटिवत्सनामा प्रयाति युग्येन विशोर्णयः ॥ २६ ॥

अपनी अत्यधिक क्रूरता के लिये प्रसिद्ध अयम् सर नामक राक्षस के समान क्रूरता के लिये विख्यात, जनस्थान (दण्डधारण या एक स्थान, पञ्चाण जनसंकुल स्थान) के विनाश का कारण केतुस्वरूप,

व्यस्तवस्त्र, 'चिद्विस्म' नामक यह राजसभा का मट्ट (अभ्यक्ष) बगी
से जा रहा है ॥ २६ ॥

उच्चैश्चिरात्सौधनिषक्तदृष्टिरध्याधिन्तः कमलोऽधिकारी ।

कलावति त्वामयमीक्षमाणः शूलार्पिताकारतुलां निभति ॥ २७ ॥

हे कलावति ! बहुत देर से ऊँचे प्रासाद पर अपनी दृष्टि को निश्चल
रूप से लगाये हुये, घोड़े पर सवार, 'कमल' नामक यह राज्याधिकारी
तुम को देखता हुआ शूली पर लटके हुये व्यक्ति की तुलना को धारण
कर रहा है अर्थात् तुम्हारी ओर ऊँचे देखने के कारण शूली पर लटका
हुआ सा प्रतीत हो रहा है ॥ २७ ॥

श्रीखण्डोज्ज्वलमल्लिकार्जुनकवानक्षामहेमाङ्ग-

शिङ्गश्चिष्टविनष्टनामिकतया प्रख्यातजारज्वरः ।

एष त्वामवलोक्य मालवपतेर्दूतः प्रपञ्चामिधः

पश्योद्वेष्टविवेष्टनानि कुरुते भोगीव मन्त्रादृतः ॥ २८ ॥

देखो, श्रीखण्ड (मलय पर्वत में समुत्पन्न चन्दन खण्ड) के सनान
उज्ज्वल मल्लिका (चनेली, बेला का एक पुष्पभेद) की माला एवं
चन्दन को धारण किये हुये, सुवर्णनिर्मित मोटे अङ्गद (बाजू-बन्द)
को पहने हुये, कटी हुई एव पुन जोड़ी गई नासिका के विनष्ट हो जाने
के कारण प्रसिद्ध भयङ्कर जार, 'प्रपञ्च' नामवाला, मालवपति का
यह दूत तुम्हें देख कर, मन्त्र से वश नै किये गये सर्प की भाँति, अपने
कापीप के डीने बन्धन को संभाल कर घोंघ रहा है ॥ २८ ॥

एष प्रख्यातदूतः कपटविटचटानर्मकर्मप्रगल्भः

श्रीगुप्तो नाम धूर्तः सकलकलिकलाकल्पनामूलदेवः ।

दृष्ट्वा दूरात्प्रसिद्धां तत्र नरजननीमञ्जलिश्चिष्टहन्तः

पश्याक्ष्णादक्षमंत्रः स्मितचलचिबुकः स्तोतुमेतां प्रवृत्तः ॥ २९ ॥

इधर देखो, अपनी जातारचना के लिये प्रसिद्ध, कपटी दिनों की

अपार भीड़ में भी मजाक करने में प्रगल्भ, कलियुग की सकल कलाओं की कल्पना का मूल प्रवर्तक अर्थात् कलियुगी कलाओं का कालिदास-मुस्मराहट के कारण चञ्चल ठोड़ी (चिबुक) वाला, 'श्रीगुरु' नामक यह भूत दूर से ही तुम्हारी प्रसिद्ध नूतन माता को देखकर, हाथ जोड़े हुये, कुछ इङ्गित (इशारा) करके इनकी स्तुति करने में लगा हुआ है ॥ २६ ॥

पातालोत्तालतालुप्रविततवदनस्पष्टघण्टाग्रदंष्ट्रा

विश्वप्रासावहेलाकुलितशिखिशिखाविभ्रमोद्भ्रान्तजिह्वा ।

मेपाणां चण्डमुण्डाहरणकटकटारावपिष्टास्थिसंस्था

मिद्धा शुष्कातिपूर्णा जयति मगवती कुट्टनी चण्डघण्टा ॥ ३० ॥

पाताल की भाँति विस्तृत एवं भयङ्कर तालु के कारण फैले हुये तथा निस्तीर्ण मुख में स्पष्ट दिखलाई पड़ रहा है उम दाँत जिसका, विश्व को मांसरूपी क्रीडा (अथहेला=तिरस्कार=क्रीडा) में चञ्चल, लपलपाती हुई अग्नि की शिखा की भाँति भयङ्कर निफलकर फड़फड़ा रही है जिह्वा जिसकी, मेपों (भेड़ों) के कटने से रक्तस्राव आदि के कारण भयङ्कर मुण्डों के ग्रहण करने से अथवा ग्रहण करने के समय शरीर की हड्डियों को पीस देता है—हिला देता है—कटकटा शब्द जिसका, ऐसी, सिद्धिप्रदात्री, शुष्का अर्थात् कठोर हृदयवाली, अत्यन्त-पूर्ण, भयङ्कर घण्टावाली, मगवती कुट्टनी विजयिनी हो रही है ॥ ३० ॥

एष स्फीतघनस्य लोमवसतेः पापस्य मूर्तिस्पृशः

शुद्धाख्यस्य महार्घहृदवणिजः पङ्काभिधानः सुतः ।

आकृष्टः प्रतिवेदमनिर्गतविटैः सारङ्गमुग्धः शिशुः

मुमुत्सां तुपराशिलोलचटकाकारः ममुदीशते ॥ ३१ ॥

हे सुन्दर धुरुटिवाली बेश्च्ये ! महाघनी, लोम के घर, पापी, मूर्ति का स्पर्श करनेवाले अथवा पाप की मूर्ति का स्पर्श करनेवाले, बहु-मून्दरस्तुओं के विश्वेता 'शङ्ख' नामक वणिक् का किशोर, 'सारङ्ग'

नामक वाद्य से मुख अथवा हरिण की माँति मोला माना 'पट्ट' नाम चारी पुत्र, प्रत्येक देशों के घरों से निकले पिटों (कामुजों) के साथ आट्ट हुआ अतः तुप (भूषी) की ढेर को देखकर चञ्चल चटक पत्नी की अवस्था का प्राप्त होकर तुम को एक टक देख रहा है, अर्थात् नैसे चटक पत्नी तुपराशि का देख देख कर पुलकित तथा आट्ट होता है जमी प्रकार यह किशोर भी तुम्हें देख कर आकृष्ट हो रहा है ॥ ३१ ॥

टिप्पणी—महाकवि के द्वारा कहा पर तुप एवं चटक की उपमा देने का अर्थ यही है कि चरमात्रा का सौन्दर्य तुम की माँति निवार और उसका और आकृष्ट होनेवाला व्यक्ति चटक पत्नी से माँति विवेकानुसृत हुआ करता है ।

एष निधिविधिना तव नूनं मेयमतिर्विधितः प्रहितो यः ।

स्मूलमुखः पृथुचूलकलापः स्कन्धयुगाश्रितकर्णसुरणः ॥ ३२ ॥

मेयमति अर्थात् भेड़ की माँति निवेकानुसृत तथा अन्य व्यक्तियों का अनुकरण करनेवाला, चौड़ा एवं मोटे मोटे गालों से भरपूर मुख वाला, शिर के बड़े बड़े बालों को धारण करनेवाला, कंधों तक लटकने वाले सुवर्णनिमित्त कर्णामुषणों को पहने हुये निधि स्वरूप यह व्यक्ति निःशय ही विधाता के द्वारा, भाग्यवशान् तुम्हारे निचे बना गया है ॥ ३२ ॥

इत्यादि कष्टेन पितृकर्ममाणं शणिकमुतं दृक्पतितं विचार्य ।

मनोरथाम्पर्यितलामतुष्टा रुक्मालिका सस्मितमित्पुत्राच ॥ ३३ ॥

'कष्ट' नामक नापित के द्वारा इस प्रकार से अनुमान किये गये दृष्टिगत उन पण्डितों के विषय में विचार करके मनोरथ के द्वारा वाञ्छित लालन से प्रसन्न होकर कष्ट का मित्र यह इष्टिनी सुस्कारान् रुक्मा बोली ॥ ३३ ॥

निर्यत्ताम्बूललालवधुमलपलद्मीवमत्त्रापलोकी
रक्तापानधुमाद्यत्सरमाधुमसरप्रसूलत्पादचारः

एवंरूपोऽतिमुग्धः शिशुरखिलधनावाप्तये बन्धकीना-

महेशाराधनार्हः स्वयमुपनमति प्रायशः पण्यगुण्यैः ॥ ३४ ॥

निकलने वाले पान के लार के कनों से चिबकबरे, मुड़नेवाले मीया (गर्दन) एवं मुर का अवलोकन करनेवाला, लाल वर्ण के जूने की जोड़ी पहनकर 'सर सर' शब्दायमान तथा लड़खड़ाने वाले ढंगों से चलकर आया हुआ, इस प्रकार का अत्यन्त भोला भाला, सम्पूर्ण धन की प्राप्ति के हेतु बेरयाओं के लिये बिना कष्ट के ही बश में करने के योग्य यह किशोर प्रायशः बेरयाओं के पुण्य के कारण ही स्वयं प्राप्त होता है ॥ ३४ ॥

कलावति त्वन्मुखनिश्चलोज्यं महाविट्धारणचक्रचारः ।

निरेदितोऽग्रे तव देवतायाः शिशुः पशुभोगविभूतिकर्मः ॥ ३५ ॥

हे कलावति ! तुम्हारे मुख को एकटक देखनेवाला, भोगरूपी सौरभ की कामनाओं से, धारणरूपी तुम्हारे गुप्तरों के द्वारा (बेरयायें धनिकों को बुलाने के लिये अपने दूतों को छोड़ती हैं) यह शिशुरूप पशु देवता सदृश तुम्हारे सामने (बलि होने के लिये) निरेदित है ॥ ३५ ॥

पार्थे त्वमेपां व्रज कङ्क तूर्णं दूर्तं करिष्यन्ति भवन्तमेते ।

तयेति दत्तोचितश्यामनोऽसौ जगाम सौधादवरुह्य हृष्टः ॥ ३६ ॥

इति श्रीक्षेत्रेन्द्रविरचितायां समयमातृकाया पष्ठः समयः ।

हे कङ्क ! तुम अविशीम इन लोगों के पास जाओ । ये लोग बेरया (कलावती) से मिलने के लिये श्चुमको दूत बनायेंगे । उस कुट्टिनी के द्वारा, इस प्रकार से भलीभाँति निर्देश किया गया वह नापित प्रमत्ततापूर्णक उस श्चुमके महल से उतर कर उन लोगों के पास गया ॥ ३६ ॥

श्री क्षेत्रेन्द्र के द्वारा विरचित 'समयमातृका' का पष्ठ समय समाप्त हुआ ।

सप्तमः समयः

अथाययौ शनैः श्रीमान्नवोद्भूतमनोभवः ।

लतालिङ्गनकृद्दालः कालः कुसुमलाञ्छनः ॥ १ ॥

इसके अनन्तर, शनैः शनैः शोभा से सम्पन्न, नवीन कामदेव का उत्पादक, लताओं का आलिङ्गन करने वाला, बाल अर्थात् अतिशोभ का ही प्रारम्भ वसन्त का समय आया ॥ १ ॥

संभोगसुखसंपत्तिः परार्थीनेव कामिनाम् ।

आललम्बे घनेशाशामितीवाकलयन्त्रिविः ॥ २ ॥

कामिजनों की संभोग-जनित सुख-संपत्ति परार्थीन सी है। इस बात का ही मानों विचार करते हुये भगवान् भास्कर घनाधिप कुबेर की दिशा का आश्रयण किये अर्थात् उत्तरायण हुये ॥ २ ॥

दक्षिणानिलसोच्छ्वासा लसत्कुसुपाण्डुराः ।

जातजृम्भा यद्युस्तन्व्यो लताः सोत्कण्ठतामिव ॥ ३ ॥

दक्षिण दिशा से प्रवहमान वायुरूपी उच्छ्वास को लेनेवाली, खिले हुये पुष्पों से श्वेत शरीरवाली, विकास को प्राप्त हुई पतली लताएँ उत्कण्ठित स्त्री (पति, विरहिणी स्त्री) की अवस्था को प्राप्त हुई ॥ ३ ॥

टिप्पणी—पतिविद्योगिनी, कामपरवरा स्त्री बड़े बड़े उच्छ्वासों को लेती है। उसका शरीर श्वेत हो जाता है और वह बारम्बार बेमार्ग सेती है तथा उसका शरीर भी हल हो जाता है।

दग्धेऽन्धकद्विपा रोपात्पुराणे पञ्चमायके ।

नवं विनिर्ममे काममृतराजः प्रजापतिः ॥ ४ ॥

अन्धक नामक राक्षसराज के हन्ता भगवान् शङ्कर के द्वारा कंध-वश प्राचीन कामदेव के जला देने पर प्रजापति (सृष्टिकर्त्ता) ऋतुराज वसन्त ने नवीन काम का निर्माण किया है ॥ ४ ॥

प्रस्सलत्कोकिलालापा गायन्त्यो मृद्वशितैः ।

वेद्या इव मधुञ्जीवा विरेजुर्नराजयः ॥ ५ ॥

कोकिल के कूकों से सयुक्त भ्रमरों के गुञ्जार के माध्यम से गान करनेवाली, पुष्परसों से भरपूर वनों की पंक्तियाँ कोकिल की माँति आलाप लेनेवाली, भ्रमर-शब्द के समान मधुर, महीन शब्दों से गानेवाली मदिरा से मत्त वेद्याओं की माँति मुशोभित हुई ॥ ५ ॥

नरकिमलयलेखापङ्क्तिमङ्गे लतानां

नखमुखलिपिलीलालोमिर्नीमाकलय्य ।

मधुमदपरिरम्भे भेजिरे लोहितत्वं

स्थलकमलयनानामीर्ष्यपेयाननानि ॥ ६ ॥

पुत्रतियों को नख के अग्रभाग से (कोमल कोमल पत्तों पर) अक्षर निम्नने की शीशीन जानकर, वसन्त ऋतु की मादकता के चतुर्दिक् प्रसरित होने पर अथवा वसन्त के द्वारा उन्मत्ततापूर्णक आलिङ्गन करने पर अथवा वसन्त की मादकता का अङ्गोद्धार करने पर, नूनन किसलय (कोपन) मन्द को धारण करने के साथ ही लताओं के मुख स्थल-कमल के घन को ईर्ष्या से ही मानो लाल हो गये ॥ ६ ॥

सैष्यधामं शिशिरसमयं वृद्धमुत्सृज्य दूरे

त्यक्त्वा शीतं तरुणममकृद्वाटरागानुबन्धम् ।

उद्यानश्रीर्मधुमभिमतं बालमेवालिलिङ्ग

प्रायः स्त्रीणां वयमि नियतिर्नास्ति कार्याधिनीनाम् ॥ ७ ॥

उद्यानश्री ने (बगीचे की शामा में) स्त्रीयता के कारण दुर्बल एवं वृद्ध शिशिर समय को दूर छोड़कर, धीरे धीरे प्रगाढ़ प्रेम से मंत्रित तरुण शीत को भी त्याग करके बाल्य अवस्था में ही वर्तमान अर्थान् अविरप्रवृत्त, अभिनव वसन्त ऋतु का ही आलिङ्गन किया । कार्य-साधिका (संभोगरूपी कार्य को सिद्ध करनेवाली) क्रियों की प्रायः अवस्था के बारे में कोई सीमा नहीं रहती ॥ ७ ॥

अथ नापिनद्वेन कृतद्वित्रगतागता ।

निध्या कृतनिषेधापि ग्रहणाग्रहणे मित्रोः ॥ ८ ॥

कथंचिदम्यर्थनया गृहीतार्था क्लावती ।

मंध्यापां मण्डनानक्ता यथा नामकमज्जताम् ॥ ९ ॥ (जुगलवन्)

इतः का कार्य करनेवाले नापिन ने द्वापर से दोनोंन द्वार द्वार के भीतर क्लावती के पास जाना-जाना किया । यद्यपि क्लावती कुछ विशोर बणिष्ट पुत्र के नमोः के लिये स्वीकार अथवा अस्वीकार के विषय में निष्ठा निषेध कर रही थी, किन्तु किसी किसी प्रकार में उन विशोर के प्रयोजन को स्वीकार करके क्लावती ने सध के नमय अपने शरीर के साथ सजावट में सलग्न हो करके बख्क जादि से सज्जित हुई ॥ ८-९ ॥

कपोले कस्तूरीम्फुटवृटिलपत्राङ्गुलिपि-

ललाटे कर्पूरं तिलकमलकालीपरिमरं ।

तनौ लीना हेमयुतिपरिचिता इन्दुमरचिः

न तस्याः कोऽप्यामीलितममुरो मण्डनविधिः ॥ १० ॥

क्लावती के कपोल पर कस्तूरी से बनायी गयी स्पष्ट तथा डेरी पत्रों तथा अङ्गुली का रचना की गयी थी । ललाटे पर शिर के बालों की पट्टि के समीप में कर्पूर या तिलक लगा था । शरीर में सुवर्ण के सनान कन्तिवाले इन्दु का पदला लेब था । वह इन्दु की कंठे कर्णनीय ललित, नयुर प्रभार से अपने को नाने की विधि थी ॥ १० ॥

प्रीटकामुक्कनमोगनादिर्षी चानमंगमे ।

नोचिताम्नीति तामूचे लज्जया नतमेगला ॥ ११ ॥

नितम्ब की स्थूलता के कारण सिद्ध करयनीवाली, क्लावती ने लज्जापूर्वक अपनी नशागता नाता से कहा—“प्रीट कन्दुरों के नाप

सम्भोग करने वाली मैं बालक (किशोर) के साथ संयोग करने के योग्य नहीं हूँ" ॥ ११ ॥

हारिणी सा तनुलता हारिणी च कुचस्थली ।

दृष्ट्व हारिणी तस्या वभौ स्मरविहारिणी ॥ १२ ॥

कलावती की लता के समान पतली शरीर मनोहारिणी थी । उसके मोटे स्तन लुभायने थे और हरिणी के समान उसकी आँखें भी सुन्दर थीं । इस प्रकार इन मनोहर अङ्गों से संयुक्त वह कामिनी कामदेव की विहारस्थली थी ॥ १२ ॥

अत्रान्तरे वणिक्पुत्रुर्विवेश गणिकागृहम् ।

आसन्नलामाभिमुखैरावृतं क्षेत्रवासिभिः ॥ १३ ॥

इसी बीच जब कि कलावती अपने को सजा चुकी थी, शीघ्र ही प्राप्त होने वाले द्रव्य के लिये तत्पर, कलावती के साथ घर में निवास करने वाले समाजियों के द्वारा घिरा हुआ वह वणिक्पुत्र उस गणिका के घर में प्रविष्ट हुआ ॥ १३ ॥

कर्णसंसक्तमुक्ताङ्गकनकस्थूलबालकः ।

बहुहेममराकान्तिसन्पथश्रवणद्वयः ॥ १४ ॥

उसके कानों में मोतियों से ढँदी हुयी मोटी मोटी सोने की बालियाँ लटक रही थीं । उसके दोनों कान अत्यधिक सुवर्ण के भार के लटकने से पीड़ा दे रहे थे अर्थात् उसके सोने के कर्णाभूषण पर्याप्त वजनी थे ॥ १४ ॥

कण्ठाभरणमध्यस्थह्रमरक्षाचतुष्टयः ।

जननीहस्ताग्रिन्यस्तसर्पपाङ्कितचूलिकः ॥ १५ ॥

उसके गले के आभूषण के मध्य में सोने के बने हुये चार वर आभरा भूतियाँ (जिनसे बालक की रक्षा की कल्पना की जाती थी) थी । उसकी शिर पर लगी कल्लोंगी माता के द्वारा अपने हाथ से रखे गये सरसों से अङ्कित थी अर्थात् उसकी कल्लोंगी में सरसों लगे हुये थे ॥ १५ ॥

टिप्पणी — किसी की बालक के ऊपर नजर न लग जाय इस लिये मातृ-
बालकों के बाल अथवा कलेगी में सरसों लगा देती थीं ।

राजावर्तमणिस्थूलगुलिकाभ्यां विराजितम् ।

राजतं चरणालीनं निम्राणः कटकद्वयम् ॥ १६ ॥

वह राजावर्त नामक मणियों की बड़ी बड़ी गोलियों से सुशोभित
चाँदी के दो कडे को अपने पैरों में पहने हुये था । ये कडे उसके पैर
को कस कर पकडे हुये थे ॥ १६ ॥

मुहुर्दोषाञ्चलदशां स्रस्तां संकलयन्पटीम् ।

बहुचूर्णकताम्बूलदग्धास्यकृतसीत्कृतः ॥ १७ ॥

चाँडे किनारे बाने, बारम्बार खिसरते हुये उत्तरीय (दुपट्टा) को
वह सँभाल कर धारण कर रहा था । पान में चूना अधिक होने के
कारण उसके मुख के भीतर कट गया था, जिससे वह रह रह कर 'सी
सी' करता था ॥ १७ ॥

स प्रनिश्य प्रकाशाशां ददर्शदर्शमादरात् ।

कलावतीं कलाकान्तललितामिदं शर्वरीम् ॥ १८ ॥

कलावती के घर में प्रविष्ट होकरके उसने पूरब की ओर आदर-
पूर्वक दर्पण और उसके सामने स्थित कलावती को 'चन्द्रमा से
उद्भासित रात्रि की भाँति' देखा ॥ १८ ॥

कथं लालनयोग्योऽयं बालः संमोगमागमवेत् ।

इतीव सारहारेण सस्मितस्तनमण्डलात् ॥ १९ ॥

दुलार करने के योग्य यह बालक किस भाँति सम्मोग का पात्र,
होगा ? मानो यही बात स्थूल हार के माध्यम से स्मित करने वाले
स्तन-मण्डल से अभिव्यञ्जित हुई है ॥ १९ ॥

द्रविणक्षयद्रीक्षायां त्रैलोक्यकृतक्षणाः ।

श्रुत्विजः सप्त विविशुः पुरस्तस्य महाविद्याः ॥ २० ॥

घन के विनाशरूपी दीक्षा में अपनी विचक्षणता से आनन्द करने वाले अथवा उन्मत्त मनाने वाले मात श्रुतिग (होता, उद्गाता, अथर्व, त्रिधा आदि यज्ञ-संचालक) रूप महापितृ उस बालक के सामने प्रवेश किये ॥ २० ॥

निर्गुटः क्षीणमाराण्यो दिविरः कमलाकरः ।

रेचको मरताचार्यः क्षुण्णपाणिस्तुलाघरः ॥ २१ ॥

गणकः सिंहगुणध तिलनामा भिपस्सुतः ।

कटिः कुटिलकथेति भोगाम्मोत्पदपट्टदाः ॥ २२ ॥

उस मातों का नाम एवं परिचय इस प्रकार है.—क्षीणसार नामक निर्गुट, कमलाकर नामक दिविर, मरताचार्य रेचक, हथकड़ा तुलाघर (तराजू से तोलने वाला), सिंहगुण नामक गणक (ज्योतिषी अथवा ज्योतिष-कर्मचारी), तिल नामवाला बैराग्य का लडका, कुटिलकटि—ये सात भोगरूपी कमल के भ्रमर हैं । २१-२२ ॥

वेदयाममागमे शैलीं शिक्षितः स निर्दग्धिः ।

प्रदिश्य कामिनीपार्थे प्रौढनत्ममुपाविशत् ॥ २३ ॥

बाहर वन गिरे ने उस बालक को वेश्या के साथ समागम का तरीका पतलाया । इसके बाद फलावती के घर में प्रवेश करके वह बालक उसके पास प्रौढ़ व्यक्तियों की भाँति बैठ गया ॥ २३ ॥

याममाच्छाद्य नामार्धमप्रस्तावरुद्रकृद्राम् ।

नर्मगोष्ठीं स रिदधे शिक्षितां शुरुपाठयत् ॥ २४ ॥

जिस प्रकार शिक्षित किया गया शुरु विना प्रमग के भी एक ही चान का पाठ करता है, उन्नी प्रकार उद बालक यज्ञ से फनावती के आगे नाकपर्यन्त मुख को ढक कर विना अथर्व के ही कटु लगाने वाले उ कट टैनी मन्त्र को किया ॥ २४ ॥

ततः प्रदिश्य कृद्गालीं गृहीत्वोन्नतसम्पत् ।

रञ्जनाय पुरश्चक्रे विद्यानां कपटस्तुतिम् ॥ २५ ॥

इसके अनन्तर उस कक्ष में प्रवेश करके तथा ऊँचे आसन पर घिराजमान हो कङ्काली (नवागत माता) ने बेटों को प्रसन्न करने के लिये उनके सामने ही उनकी कपट-स्तुति करना प्रारम्भ किया ॥ २५ ॥

धन्योऽयं बालकः श्रीमान्भवद्विर्यस्य संगतिः ।

युष्मत्परिचयः पुण्यपरिपाकेन लभ्यते ॥ २६ ॥

सम्पत्ति एवं शोभा का पात्र यह बालक धन्य है, जिसकी आप लोगों के साथ संगति है। निश्चय ही आप लोगों की संगति (साथ) पुण्य के परिणाम स्वरूप उपलब्ध होती है ॥ २६ ॥

शिशुरप्ययमस्माकं कामुकोऽमिमतः परम् ।

बाल एव सहस्रांशुः कमलिन्या विकामकृत् ॥ २७ ॥

कामुक यह बालक भी हम लोगों को बहुत अधिक प्रिय है। सूर्य अपनी वाक्यावस्था में ही कमलिनी का विकास करने वाला होता है ॥ २७ ॥

इत्यादिभिः स्तुतिपदैः कुट्टन्या विटमण्डले ।

स्वीकृते भूरभूरिप्रं ताम्बूलवेलापाटला ॥ २८ ॥

उपर्युक्त प्रकार से कहे गये प्रशंसावचनों से रक्त वृद्धा ने विटमण्डल को अपना बना लिया। कङ्काली के बोलने के समय उसके मुख से निकले हुये पान के रस से मिश्रित थूक के कणों से वहाँ की जमीन लाल हो गई थी ॥ २८ ॥

ततः काली कलावत्या धात्री वेतालिकाभिघा ।

ताम्बूलदानावसरप्रहर्षाकुलितामदत् ॥ २९ ॥

तदनन्तर कलावती की 'वेतालिङ्गा' नामवाली कुण्डलवर्णा घाई ने पान देने के समय अत्यन्त हर्ष से आकृत हो कर बोली ॥ २९ ॥

अत्यल्पः परिवारोऽयं ताम्बूलप्रणयी स्थितः ।

नास्माकमन्यवेद्यानामिवासांगव्यः परिग्रहः ॥ ३० ॥

पान स्वाने का आनी, यह अत्यधिक अन्य परिवार यहाँ पर स्थित है। हम लोग अन्य बैर्याओं का भाँति असुरक्ष्य अर्थान् महत्त से व्यक्तियों का समझ नहीं करती है ॥ ३० ॥

रुद्रः प्रथमपूज्योऽयं देवाकृतिसुदारधीः ।

यस्यानुगोपात्सुलभा दुर्लभापि क्लामती ॥ ३१ ॥

देवताओं की तरह आकृति पने अर्थान् निव्यसारीरघारी उगार बुद्धि-माने यह 'रुद्र' सर्वप्रथम स्वागत करने के पात्र है, पिनके अनुरोध के कारण दुर्लभ भी क्लामती सुलभ हुई है ॥ ३१ ॥

जामाता गौरवाद्दोऽयं पूज्यः कन्यार्पणेन नः ।

शाद्विकः कमलो नाम ममानं पूर्वमर्हति ॥ ३२ ॥

(मानक की आर सँकट करके) गौरव के पात्र यह जामाता (जामा) कन्या (क्लामती) का लेकर हमलोगों के पूजा के योग्य है। कमल नामक यह शाद्विक (शाद्विधिरति अथवा शाद्व का वगपारी) भी प्रथम सम्मान के मानन है ॥ ३२ ॥

अयं पितुः क्लामन्याः प्रेतशर्पप्रतिग्रही ।

यः परादिगमात्त शक्तिमहावर्ती ॥ ३३ ॥

यह व्यक्ति भी क्लामती के पिता के प्रेतशर्प (विष्णुमान, श्राद्ध आदि) को ग्रहण करने वाले हैं। ये बड़े बड़े प्रेतों को करने वाले हैं। इनोंने अभी कल ही पर के पित्त मगजकि (बहुत बली मिद्धि) को प्राप्त किया है ॥ ३३ ॥

अयं स्यन्पतेः सुतुः रुषिलः क्लाममिधः ।

गुन्म्राना क्लामन्याः क्लामपानो मनुवदः ॥ ३४ ॥

यह क्लामती के पिता के स्यन्पते के पुत्र हैं। इनका नाम (क्लाम) है। मंदिरा प्रदान करने मान के 'क्लामपान' की क्लामती के गुन्म्राने हैं ॥ ३४ ॥

मृदङ्गोदरनामायं कलावत्याः स्वमुः पतिः ।

मातुलः कलहो नाम विन्दुसारः सहोदरः ॥ ३५ ॥

यह 'मृदङ्गोदर' नाम के व्यक्ति कलावती की बहन के पति हैं और यह 'कलह' नाम के महाशय नामा हैं तथा 'विन्दुसार' सहोदर भाई हैं ॥ ३५ ॥

इयं दत्तकपुत्रस्य कलावत्याः कलायुपः ।

घात्री कलावती नाम रुणचन्द्रश्च तत्पतिः ॥ ३६ ॥

यह कलावती के दत्तकपुत्र (गोद लिया गया पुत्र) 'कलायु' की घात्री (धाई) कलावती है और इनका पति 'रुणचन्द्र' है ॥ ३६ ॥

अयं भरतभाषाजः काम्बो भागवतात्मजः ।

गायनः स्वरदासोऽयं महामात्यस्य बल्लभः ॥ ३७ ॥

यह नाट्याचार्य भरत की भाषा (नाट्यशास्त्र) का माता 'भागवत' नामक व्यक्ति का पुत्र अथवा परमरक्षक का पुत्र 'काम्ब' है । यह राजा के महामन्त्री का मित्र गायक 'स्वरदास' है ॥ ३७ ॥

टिप्पणी—महाकवि ने किन्नी गायक के लिये 'स्वरदास' यह बड़ा ही उपयुक्त नाम रक्खा है । 'स्वरदास' के माने होते हैं—तन्मयता के साथ स्वरों की आराधना करने वाला अथवा स्वरों का बहुत बड़ा पंडित, स्वर सिखा दास के समान अनुवर्तन करते हैं ।

निगिलः मूपकाराख्यः कुम्भकारश्च कर्परः ।

वक्रशूलधरश्चायं खड्गनो मुन्यराहनः ॥ ३८ ॥

'मूपकार' नामक यह निगिल (जब कुछ खाने वाला) है । यह 'कर्पर' (पात्र का टूटा हुआ टुकड़ा) नामक कुम्भकार है । राजा के अथवा कलावती के पीछे पीछे छत्र (छाता) पकड़ कर चलने वाला यह 'वक्र' (बक्रुन्ना) है और यह बगीची गीचने वाला 'खड्गन' है ॥ ३८ ॥

रतिशर्माद्विजन्मायं गणिकाग्रहशान्तिद्वन् ।

आरामिकः करालोऽयं कीलवर्तश्च नायिकः ॥ ३९ ॥

यद् 'रतिरानी' नाम के ब्राह्मण हैं। इनका कार्य है बेरियाओं के प्रश्नों को शान्त करना। यह उद्यान में रहने वाला 'करात' है और यह 'कीलवर्त' नाविक (मल्लाह) है ॥ ३६ ॥

उद्यानपालः कन्दोऽयं मुकुलाख्यश्च पौष्पिकः ।

चर्मकुर्मदत्तोऽयं मारच्छिद्रश्च घावकः ॥ ४० ॥

यह उद्यानरक्षक 'कन्द' है तथा यह 'मुकुल' नामक व्यक्ति पुष्पों की देखभाल करने वाला है। यह चमड़े का कान करने वाला 'चर्मदत्त' है। यह 'मारच्छिद्र' नामक घावक (एक स्थान से दूसरे स्थान में सन्देश आदि पहुँचाने वाला व्यक्ति) है ॥ ४० ॥

बहिरान्ते च चाण्डाली क्रोशन्ती घर्घराभिघा ।

डोम्यश्चण्डरवाख्यश्च कोष्ठागारप्रहारिकः ॥ ४१ ॥

पर के बाहर 'घर्घरा' नामवाली चाण्डाली आक्रोशपूर्वक चिल्लाती हुई लड़ती है। वहीं पर गोष्ठागार (स्टोर हाउस, स्टोर रूम) पर प्रहार करने वाला—घावा बोलने वाला 'चण्डरव' नामक डोम भी वर्तमान है ॥ ४१ ॥

ताम्यूलं देयमेतेभ्यः प्रहेयं प्रातरेण तु ।

मरत्यै शम्बरमालायै गुरवे दम्भभूतये ॥ ४२ ॥

इन सब लोगों को ताम्यूल देना चाहिये और अतिशीघ्र अथवा प्रातःकाल सखी 'शम्बरमाला' एवं गुरु 'दम्भभूति' के पास भेजना चाहिये ॥ ४२ ॥

उक्त्वेति पूगकल्लुण्ठिनिविष्टचित्ता

वैतालिका निविधवेयवनीप्रणिष्टाः ।

चक्रुः प्रभूतमनुपाननिघूर्णमाना-

स्तान्मूलदानरहुमानगतागतानि ॥ ४३ ॥

ऐसा यह करके अर्थात् ऐसा करने के अनन्तर अथवा इसीप्रकार की बात कह करके पूरक (सुझाव) देने में संलग्न चित्त वाले

विविध देवताओं के मूर्तियों में प्रवेश करने वाले जबकि विविध सजावटों से सुशोभित नटुगृह में प्रवेश करके वैतालिकजन अन्यन्त नदिरा पान से मरवाते ही परस्पर पान-वितरणरूपी सम्मान में दूरे-दूर इधर-उधर जाना-जाना क्रिये ॥ ४३ ॥

ततः क्षीर्वांसनाय्यं कथनानैर्विदः परम् ।

उद्वेजितेव रजनी धूपज्वालेन निर्यया ॥ ४४ ॥

नृपय्य बाहुयुधि दक्षिणोऽहं नमैव राज्यं कलनान्तरत्पम् ।
मपि स्थिते तिष्ठति नाट्यशास्त्रं हते तुला विचपन्निश्रियं मे ॥ ४५ ॥

“मैं सम्मान में राजा का दागिना हाथ हूँ अर्थात् प्रदत्त सजापक हूँ। सम्पूर्ण राज्य मेरी ही कलन के अधिकार में है अर्थात् मैं जो कुछ लिख देता हूँ बड़ी होता है। मेरे रत्न तक ही नाट्यशास्त्र जीवित है। मेरी तराजू छुदेर की लक्ष्मी—धन-सम्पत्ति का उन्मूलन करती है ॥ ४५ ॥

त्रिलोक्यदृष्टं गणितेन वैबि नरैव मोक्षस्य कृता चिकित्सा ।
भुक्ता नया भूपतयः स्वच्छकैरित्युचिरे नद्यनदोद्गतास्तं ॥ ४६ ॥

मैं त्रिलोकी के मन्नाधारों को अपनी गणित से दूर जानता हूँ। मैंने ही राजा मे-उ की चिकित्सा की थी। मैंने अपनी मूर्तियों से बहुतों राजाओं को प्रमत्त कर उनकी सम्पत्ति का उन्मूलन किया है। इसी प्रकार की बहुत सी बातें नदिरा ने मरवाने उन लोगों ने की ॥ ४६ ॥

विमुद्यन्ते कलावत्या तान्मूलार्पणलीलया ।

निर्ययुः कलयन्तोऽन्तर्भावितो मोक्षसन्दनम् ॥ ४७ ॥

ताम्बूल देने की लीला से कलावती ने उन लोगों को अपने यहाँ से बिदा किया । ये लोग आगे (बालक से) मिलने वाली भोग्य-सम्पत्ति का परस्पर आकलन करते हुये गये ॥ ४७ ॥

अथ विततवितानं हंसशुश्रोपधानं
ग्रयनममलचीनप्रच्छदाच्छादिताग्रम् ।

अभजत हरिणाक्षी क्षीनमादाय चालं
निजपरिजननर्मस्मेरवक्राम्बुजश्रीः ॥ ४८ ॥

उसके बाद अपने परिजनों के द्वारा की गयी हंसी-मजाक पर मुस्कराने से विकसित हो गयी है मुख-कमल की शोभा जिसकी ऐसी, हरिण की भाँति विशाल नेत्रवाली कलावती मदिरा से मत्त उस बालक को लेकर के पलंग पर लेट गयी । पलंग के ऊपर चँदोबा (वितान) फैला हुआ था । शिरहाने हंस के समान धबल तकिया रखी हुई थी तथा उसका ऊपरी भाग स्वच्छ सिल्क वस्त्र के चहर से आच्छादित था ॥ ४८ ॥

शिशुतररमणेऽस्याः कौसुमामोदलुम्बद्-
भ्रमरभरनिपार्तर्यृणमानाः प्रकामम् ।

प्रसरदगुरुधूमदयामलाग्रा बभूवुः

वर्लितविरतवक्त्रा लज्जयेव प्रदीपाः ॥ ४९ ॥

इति श्रीक्षेमेन्द्रविरचितायां समयमानुषायां कामुकसमागमौ नाम
सप्तमः समयः

अत्यधिक अल्पप्रयस्क बालक के साथ युवावस्था से मतवाली कलावती के रमण प्रारम्भ करने पर पुष्पमाला अथवा दीपक ने पड़े सुगन्धित तेल के गन्ध के लोभी भीरों के गिरनेसे-रूपटनेसे अत्यधिक फाँपनेवाले (लड़खड़ाती ली चाले), घर में फैलने वाले अशुभ के घुँपे से श्यामल अभ्रमागवाले दीपक मानो इस अंशम सयोग की लज्जा से ही अपने मुख को या तो धुमा लिये अथवा चुम्क गये ॥ ४९ ॥

श्री क्षेमेन्द्र के द्वारा विरचित समय-मानुषा का कामुकसमागम नामाला यह सप्तम समय समाप्त हुआ ।

अष्टमः समयः

अथ मितकिरणरतिश्रमखिन्नेन निनिद्रतारकारजनी ।

प्राभातिकमलिललनस्नेदवती क्षामतां प्रययौ ॥ १ ॥

एतदनन्तर, चन्द्र के साथ रमण करने से थकी हुई सी, अर्थात् प्रातः कालीन जल-स्नान अर्थात् ओस कण रूपी पसीनेवाली तथा अस्व-
स्त्व नक्षत्रों वाली रात्रि दुःखज्ञता (समाप्ति) को प्राप्त हुई ॥ १ ॥

टिप्पणी—प्रबल शान्ति के द्वारा भोग गये रमणी भी खिन्न हो जाती है, उसके शरीर पर रतिश्रम के कारण पसने की बुँदें ठमर आती हैं, तथा वह निद्रावस्था आँखें मूंदने लगती है और हो जाती है शिथिल भी। कवि ने यहाँ पर रात्रि की अवस्था के वर्णन से कलावती की अवस्था की सूचना दी है।

गणिका ततः प्रभाते सकलनिशाजागरेण तात्राक्षी ।

रात्रिसुखप्रश्नपरां प्रोवाच समेत्य कङ्कालीम् ॥ २ ॥

रात्रि बीतने पर प्रातः काल, रात्रिभर जागने से किञ्चिन् लाल नेत्र वाली गणिका कलावती ने रात्रि के सुख के विषय में पूछनेवाली 'कङ्काली' से उसके पास जाकर कहा—॥ २ ॥

मृगु मातः शिशुवयसस्तस्य स्फुटतामशालपुष्टस्य ।

यस्याल्पकस्य बहुलं मरिचकणस्येन तीक्ष्णत्वम् ॥ ३ ॥

हे मातः ! छोटी मरिच की भाँति तिसमें अत्यधिक तीक्ष्णपन है ऐसे, असमय में हा मुष्ट (सम्प्राप्त) शिशुअवस्थावाले उस बालक की प्रतीणता को सुना ॥ ३ ॥

आरोपितः स चेदवा सत्त्वामन्युन्नतां शनः शिशुकः ।

निश्चलतनुमुद्धतं धृतः स च हृतकुम्भोऽभूत् ॥ ४ ॥

चेटी के द्वारा धीरे से अति ऊँची शय्या पर चढ़ाया गया वह घूर्त बालक एक क्षण तक अपने शरीर को निश्चल करके बनावटी ढंग से मो गया ॥ ४ ॥

ललनासुलभकुतूहलचपलतयालिङ्गितः स्नयं स मया ।

तत्क्षणनयसुरतान्ते सहमा निवेष्टतां प्रपयौ ॥ ५ ॥

ललनाओं में स्वभावतः वर्तमान कुतूहल की चञ्चलता से मैंने स्वयं उस बालक का आलिङ्गन किया । उस समय, जीवन में प्रथम-बार सम्भोग करने के अनन्तर सइसा वह निरचेष्ट हो गया ॥ ४ ॥

पूगफलमस्य लग्नं ज्ञात्वेति मया स शीतसलिलाद्रिम् ।

दत्त्वा पद्मसि हस्तं प्रलयमयाह्लम्भितः संज्ञाम् ॥ ६ ॥

इस बालक को सुपाड़ी लग गयी है । ऐसा सोचकर मैंने, मर जाने के भय से, उसके पद्मस्थल पर ठण्डे जल से भीगे हुये अपने हाथ को रखकर उसे होश में लाया ॥ ६ ॥

लब्धास्वादः स ततश्चटकरतिर्मा प्रजागरो मूर्तः ।

रौदृकान्तामकरोद्गणनातीतैः समारोहैः ॥ ७ ॥

उसके बाद, सम्भोग के आस्वाद को प्राप्त करके, चटकपक्षी (गौरैया अथवा हावा नामक पक्षी) की भाँति रति करनेवाला, मूर्तिमान् रात्रिका जागरणभूत, वह बालक अगणित सम्भोग मुद्राओं एवं सम्भोगों से मुक्त, सम्भोग में जानेवाले परिश्रम से वदभूत रौद से फलान्त कर दिया अर्थात् थका दिया ॥ ७ ॥

बालमुखं तरुणवरं रमसरसेन प्रगोषयन्त्या तम् ।

कष्टं मयैव कृष्टो ज्वलिताङ्गारः स्वहस्तेन ॥ ८ ॥

आनन्दपूर्ण उत्कण्ठावरा, मैंने बालमुख अर्थात् देखने में बालक प्रवीत होनेवाले किन्तु तरुणवर (पयोध तरुण), अतः सम्भोग में कष्ट पहुँचाने वाले उस बालक को जगा दिया । मेरा वह जगाता क्या था, मानो मैंने ही अपने हाथ से प्रज्वलित अङ्गार खींच लिया हो ॥ ८ ॥

रोदिति शिशुरिति दयया यस्य न दशनक्षतं मया दत्तम् ।

तेन ममाधरविम्बं पश्य शुकेनेव खण्डितं बहुशः ॥ ९ ॥

“बालक रोता है” ऐसा सोचकर दया के कारण मैंने जिसके मुख पर दशनक्षत (दाँत से काटना) नहीं किया, देखो, शुक की माँति उसी बालक ने मेरे लाल लाल अधर को कई जगह काट दिया है ॥ ९ ॥

मुहुरारोहणहेलापरिरम्मैर्बामनीकृतं तेन ।

शिशुमंगमात्क्षणं मे लज्जितमिव नोन्ननाम कुचयुगलम् ॥ १० ॥

उस बालक के द्वारा बारम्बार आरोहण और कीतुकपूर्ण आलिङ्गनों से दवा-० कर छटा बनाये गये, शिशु के साथ सम्मोग करने से क्षण भर के लिये लज्जित की भाँति, मेरे दोनों स्तन उन्नत नहीं हुये ॥ १० ॥

अहमस्थाननखक्षतविक्षततनुवह्दरी परं तेन ।

गुप्तिं कथं करिष्ये विदग्धजनसंगमेऽङ्गानाम् ॥ ११ ॥

उस बालक के द्वारा अनुचित स्थानों में भी अर्थान् उहाँ-उहाँ नखों से अत्यधिक क्षत-विक्षत योमल शरीर वाली मैं विदग्धजनों सामाजिकों-के महापास में अपने अङ्गों को कैसे छिपाऊँगी ? ॥ ११ ॥

उक्त्वेति वाररमणी निखिलनिर्ग्राथप्रजागरोद्विग्ना ।

क्षोणीं निरीक्षमाणा वैलक्ष्येण क्षणं तस्थौ ॥ १२ ॥

सम्पूर्ण रात्रि भर जागने से उद्विग्न, बट सुन्दरी बेरदा ऐसा कटकर लज्जा के कारण पृथिवी को देखती हुई अर्थान् नीची निगाह किये हुई एक क्षण तक खड़ी रह गई ॥ १२ ॥

तामवदत्कङ्काली सस्मितवदना विटङ्कदंष्ट्राभिः ।

मोगोद्भवे पिटानां मनोरथं पाटयन्तीति ॥ १३ ॥

कङ्काली के मुस्काने से उसके ऊबड़-खाबड़ एवं दाँत की ओर निकले हुये दाँत स्पष्ट दिखलाई पड़ने थे। कलावती की सन्दोषित

करती हुयी तथा सम्भोग के अनन्तर होने वाले विटों के मनोरथों को निनष्ट करती हुयी उसने कहा ॥ १३ ॥

एवंविधैव मुग्धे परिशीलितदृष्टचेटकदुकानाम् ।

प्रीडिः कण्टकनीक्ष्या भवति परं पण्यजीवनशिशूनाम् ॥१४॥

हे मुग्धे ! नगर के चेटों (फामुकों) के सम्पर्क के कारण कटु, बेरियाओं की जीविका के आश्रयभूत बालकों की प्रीड़ता (संभोग-निपुणता) इसी प्रकार से कण्टक की भाँति अत्यधिक तीक्ष्ण हुआ करती है ॥ १४ ॥

पितृभवनद्वयं नियतं हस्तगतं विद्यते धनं तस्य ।

भवति न तद्विधमधिकं प्रागल्भ्यं रिक्तहस्तस्य ॥ १५ ॥

निश्चय ही उसके पास अपने पिता के घर से लाया गया पर्याप्त धन वर्तमान है अन्यथा खाली हाथ (धनरहित) व्यक्ति की उस प्रकार की सीमोल्लंघिनी प्रगल्भता नहीं होती है ॥ १५ ॥

विलनिहितद्रविणकणधपलगतिर्मृपकोऽप्यलं पुत्रते ।

दानशीणस्तन्त्रीं सुपिरकरः कुञ्जरो भजते ॥१६॥

अपने विल में अन्न के दानों को एकत्रित करके रखने वाला भूषक भी काफी उद्धत-भूद करता है । दान (मदबल) से रहित अतः खाली द्विद्रों से पूर्ण गुण्डादण्डवाला हस्ती भी निद्रितावस्था (अलसाई हालत) में रहता है अर्थात् चपलता शून्य हो जाता है ॥ १६ ॥

विटविनिवारणयुक्त्या निर्मक्षिकमाक्षिकोपमं सदृशा ।

गत्वा करोमि तावत्तपोपजीव्यं धणिकू-तनयम् ॥१७॥

अप्रयम में सदृशा जाकर, अन्य विटों को हटाने की युक्ति से एकान्त में जुआरी की भाँति उस धणिकूपुर को तुन्दारा उपजीव्य (जीरिसा या नाथन) बनाऊँगी ॥ १७ ॥

अस्माकमहमहं पन्योपनतं महाधननिधानम् ।

दासीमुताः किमेते खादन्ति विटाः प्रसङ्गेन ॥ १८ ॥

पण्यभाव को प्राप्त अर्थात् अवक्रेतव्य (सरीदने के योग्य) हम वेरियाओं का प्रत्येक अङ्ग बहुत बड़े धन का रखाना है। दासीपुत्र (यह एक प्रकार की गाली है) ये विट प्रसङ्ग से (समोग से) क्या खाते हैं? अर्थात् अपना ही धन खाते हैं ॥ १८ ॥

इत्युक्त्या दर्णतरं शय्यामवनस्थितं समभ्येत्य ।

शिशुमरदत्कङ्काली विजनकथाकेलितन्त्रेण ॥ १९ ॥

ऐसा कह करके बड़ी शीघ्रता से शय्या-भवन (समोग घर) में स्थित उस घालक के पास जाकर के कङ्काली ने एकान्त में बात करने के योग्य रतिविलास की पद्धति से उससे कहना प्रारम्भ किया ॥ १९ ॥

अपि पुत्र रात्रिरखिला सुखेन ते कुमुदहासिनी याता ।

गन्धनयोग्योऽस्माकं कलावतीहृदयचोरस्त्वम् ॥ २० ॥

हे पुत्र ! कुमुदों के माध्यम से हास करने वाली अथवा कुमुद की भाँति घबल तुम्हारी यह सम्पूर्ण रात्रि सुप्तपूर्वक घीवी है ? कलावती के हृदय को चुराने वाले तुम हम लोगों के द्वारा बाँध कर रखने के योग्य हो। अर्थात् तुम्हें जाने देने की हम लोगों की इच्छा नहीं होती ॥ २० ॥

टिप्पणी—कुमुदों के विकास की बात से महाश्वि ने शरद् शत्रु की सूचना दी है।

ध्यानं बलनं जृम्भणमुच्छ्वसनं व्रपनं परिस्खलनम् ।

त्वत्संगमेऽपि यस्याः किं कुरुते निर्गते त्वयि सा ॥ २१ ॥

तुम्हारे साथ संयोग के समय भी जिस कलावती का ध्यान, बलन (करवट घबलना), जृम्भाई लेना, उच्छ्वास लेना, कापना, लडखडाना आदि बातें हुआ करती हैं, वह तुम्हारे चले जाने पर क्या करेगी ? अर्थात् तुम्हारे चले जाने पर तो उसका जीना भी कठिन होगा ॥ २१ ॥

टिप्पणी—यहाँ यह स्मरण्य है कि पतिविरहिणियाँ ही अपने पति के अभाव में उसका ध्यान करती हैं, उसके लिये उच्छ्वास के कारण निद्रा

अमाव में करवटें बदला करती हैं, जेमाई लेती हैं, लम्बी लम्बी साँसें भरती हैं, काँपती तथा लड़खड़ाती हैं। किन्तु ब्रह्म के अनुसार बालक के संयोग के समय ही जब कलावती की यह अवस्था है तो विरह में वह क्या करेगी, कहा नहीं जा सकता।

लङ्घितवरुणसमुद्रा कलावती यत्पटाञ्चले लगा।

यामर्ययते दूर्तैर्दक्षिणदिग्बल्लभो भोजः ॥ २२ ॥

तुम्हारे वरुण के अञ्चल में लिपटी हुई अर्थात् तुम्हारे सहवास में मग्न कलावती ने बहुत से आये हुए युवकों को अपने साथ सहवास का अवसर न देकर उनका विस्कार कर चुकी है। दक्षिण दिशा का शासक भोज भी अपने दूतों के द्वारा कलावती से सम्मोग के लिये प्रार्थना करता है ॥ २२ ॥

जन्मान्तरेऽनुबद्धा यदि नेयं संगतिः कृता विधिना।

उत्किं त्वयि मम जाता परलोके पुत्रकायाश्च ॥ २३ ॥

विधाता ने यदि तुम्हारी और कलावती की संगति को जन्मान्तरेऽनुबद्धा न किया होता तो मेरी परलोक में भी तुम्हारे द्वारा पुत्रकाय (पिण्डदान आदि) की आशा क्यों जागृत होती? अर्थात् निश्चय ही तुम्हारा और कलावती का परस्पर प्रेम जन्म-जन्मान्तर का है। यही कारण है कि पुरुरूप में मानती हुई मैं भी तुमसे मरणोपरान्त पिण्डदान आदि की आशा करती हूँ ॥ २३ ॥

विभस्तु संगमेऽस्मिन्नेकः परिचिन्तितोऽस्ति मे भयदः।

यदयं मिठसंपातः कण्टरुजालापते परितः ॥ २४ ॥

किन्तु इस संगम में मुझे एक ही भयदायी विघ्न दिखलायी पड़ रहा है। वह विघ्न यह है कि—कटिदार जाल की भाँति मिठों का यह बहुत बड़ा समूह चारों ओर वर्तमान है ॥ २४ ॥

भुक्त्या पीत्वा भयतः परधनवर्णाः स्वनिष्ठपरिहीणाः।

धूर्तस्त्वामेव पितुर्वन्धनयोग्यं प्रयच्छन्ति ॥ २५ ॥

अपने धन से हीन, दूसरे के धन से जीने वाले, धूर्त ये बिट तुम्हारे धन को खा पीकर तुम्हें पिता के चन्धन (शासन) में ले जाकर कर देंगे ॥ २५ ॥

टिप्पणी—इस निर्धन बिट धनी व्यक्तियों और उनके लड़कों की बड़बड़ बेरियाओं के पात ले जाते हैं और उन देखाओं तथा उन लड़कों एवं व्यक्तियों से भी पैसा लेकर अपना कार्य चलाते हैं। पैसा समाप्त होने पर अपना स्वार्थ सिद्ध न होते देखकर वे शिकायत करके उन व्यक्तियों की उनके अभिभावकों के कठोर निन्दन में रक्खा देते हैं।

तस्माद्यदि दिनमेकं तिष्ठसि सुतरामदृश्यरूपस्त्वम् ।

तदयं कुटिलविटानां निराश्याद्भिद्यते यूथः ॥ २६ ॥

अतः यदि तुम एक दिन तक पूर्णरूप से छिप कर यहाँ रहोगे तो निराश होकर के अपने आप कुटिल बिटों का यह समूह यहाँ से चला जायगा ॥ २६ ॥

इत्युक्ते कुटुम्बा शैशवसरलाश्रयो वणिन्धनुः ।

तामवदत्सत्यमिदं स्नेहान्मातस्त्वया कथितम् ॥ २७ ॥

कुटुम्बी के ऐसा कहने पर शैशव के कारण सरल स्वभाव वाले उस वणिक्पुत्र ने उससे कहा—“मातः ! स्नेहपरा जो तुमने कहा है यह पूर्ण सत्य है ॥ २७ ॥

अस्ति ग्रन्थिनिबद्धं मम किञ्चिज्जनकभाण्डशालात्तम् ।

तदिदं गृहाण दुहितुर्मण्डनमोगव्यये योग्यम् ॥ २८ ॥

पिता जी के भाण्डार-गृह अथवा घर्तन घर से ली गयी यह कुट्ट सम्पत्ति मेरी गाँठ में बँधी हुई है। अपनी पुत्री ‘कलावती’ की साज-सज्जा तथा खाने-पीने में व्यय के योग्य इसको तुम ले लो” ॥ २८ ॥

इत्युक्त्वा सारतरं दत्त्वा तस्यै त्रिशुर्गुह्यपिणम् ।

तत्संदर्शितमविशच्छन्नपथं पृथुलहर्म्यतलकोष्ठम् ॥ २९ ॥

ऐसा कह कर वह बालक अत्यन्त बहुमूल्य उस द्रव्य को उसे देकर

उसके द्वारा बतलाये गये, गुप्तमार्गवाले, अति ऊँचे महल के सर्वोच्च कोठे पर (ऊपरी तल्ले की कोठरी में) चला गया ॥ २६ ॥

तं प्रच्छाद्य महर्षा कृत्वा मिथ्या भुसं नरनिपादम् ।

अभ्येत्य विद्वानवदत्कङ्काली कलकलारम्भे ॥ ३० ॥

अत्यधिक प्रसन्न हुई कङ्काली ने उस द्रव्य को छिपा कर और अपने मुख को विषाद से परिपूर्ण अर्थान् उदास करके बिटों के पास जाकर कोलाहल के मध्य उनसे कहा ॥ ३० ॥

आजन्ममहजमुद्दामस्मत्प्रणयोपचारतुष्टानाम् ।

उचितः किमयमकस्माद्भवतां निन्द्यः भमाचारः ॥ ३१ ॥

जन्म से ही स्वामानिक मित्र, हमारे प्रेमपूर्ण सेवा-सन्कार से सन्तुष्ट आप लोगों का, एकपक्ष, यह निन्द्य आचरण क्या उचित है ॥ ३१ ॥

दस्युमुतस्तीक्ष्णतरः स भगद्भिः किं वणिक्सुतव्याजात् ।

रत्नाभरणाकीर्णं प्रवेशितोऽस्मद्गृहं रात्रौ ॥ ३२ ॥

आप लोगों ने रात्रिमे, वणिक्-पुत्र के बहाने से क्या तीक्ष्णतर (अत्यन्त खतरनाक) रत्नजटित आभूषणों को धारण करनेवाला, कोई डाकू का पुत्र ले आकर प्रविष्ट करा दिया था ? ॥ ३२ ॥

अन्यगणिकाप्रयुक्ता यदि यूयं प्रहमनोद्यताः प्रमथम् ।

तत्किं स्त्रीवधमदृशं क्रियते पृथुसाहसं पापम् ॥ ३३ ॥

यदि हठान् दूमरी बेरिया के द्वाते प्रेरित होकर आप लोग हमारी हँसी करने के लिये तत्पर हैं; तो स्त्री-वध के सदृश, अत्यधिक साहस से परिपूर्ण यह पाप क्यों करने है ? ॥ ३३ ॥

न परं प्रमातृनिद्रान्धविप्रशयां क्षणं कलापत्याम् ।

आदाय हारमदितं केनूरयुगं गतः कामी ॥ ३४ ॥

यह कामी आलस्य केवल क्षण भर के लिये कलापवती के शयन-

कालीन तन्द्रा से विवश हो जाने पर—अलसाकर सो जाने पर—इसके हार के साथ ही दोनों केयूर (बाजू-बन्द) को लेकर चला गया ॥३३॥

श्रूयन्ते प्रतिनगरं भूपणलुब्धः पणाङ्गना निहताः ।

निजदेवताप्रसादात्कलावती किं तु मुक्ताय ॥ ३५ ॥

यह सुना जाता है कि प्रत्येक नगर में आमूषण के लोभी व्यक्तियों के द्वारा बेचारी वेश्यायें मारी जाती हैं। किन्तु आज तो कलावती अपने कुल देवताओं की कृपा से सुरक्षित बच गयी है ॥ ३५ ॥

तेन यदेतन्नीतं राजकुले कस्य भूर्भिः परिपतति ।

प्रतिभूर्भवद्विधानां कं गृहीतः पण्यललनाभिः ॥ ३६ ॥

यदि यह मामला राजकुल (न्यायालय) में ले जाया जाय तब किस के शिर पर बीतेगा ? अर्थात् इसका परिणाम कीन भोगेगा ? आप लोगों के समान वेश्याओं का अवरोधक (शत्रु) कहाँ देखा गया है ? अवधवा वेश्याएँ आप लोगों के समान विश्वास अन्यत्र कहाँ—किस-पर—करती हैं ? ॥ ३६ ॥

पश्यत पश्यत लोकाः कलिकालः कीदृशः प्रवृत्तोऽयम् ।

स्त्रिंशः सुहृदः सधनाः स्त्रीवधपापं भजन्ते यत् ॥ ३७ ॥

अरे माई देखो-देखो यह कैसा कलियुग प्रारम्भ हुआ है ? जिससे कि धनवान् प्रेमी मित्र जन भी स्त्रीवध के सदृश पाप करते हैं ॥ ३७ ॥

को वेचि गुणविभागं हस्तेन परीक्ष्यते कथं जातिः ।

दुर्ज्ञेयं कुटिलानां चैष्टितमन्यद्वचश्चान्यत् ॥ ३८ ॥

किस व्यक्ति में कितनी मात्रा में गुण हैं, इस बात को कौन जानता है ? हाथ देखकर जाति की परीक्षा भला कैसे की जा सकती है ? कुटिल व्यक्तियों के कार्य एवं वचन दुर्ज्ञेय तथा परस्पर विरुद्ध हुआ करते हैं ॥ ३८ ॥

इत्युक्त्वा गृहपरिजनकलकलहोदग्रदुःसहविकारा ।

कङ्काली राजपथे चुक्रोश गतागतैस्तारम् ॥ ३९ ॥

ऐसा कह कर घर के परिवर्तनों के हो-दहला से-वर्द्धित दुःसह कष्टमाली कट्हाली ने राजमार्ग में इधर-उधर ढौड़कर—आ-जाकर-जोरों से चीखना-चिन्लाना प्रारम्भ किया ॥ ३६ ॥

तद्रोन्यैव मिदास्ते मपदि विचर्णा निरुत्तरप्रतिभाः ।

निर्गन्थोन्पथविचरैर्दूरतरे संगमं चक्रुः ॥ ४० ॥

उक्त बात के मय में ही एकाएक विषय आछाट्याने, कुछ भी उत्तर देने में अममर्ष में पिट पड़ी शीघ्रता से भागने के जिस किसी मार्ग से निकल कर काफी दूर पर जाकर परस्पर मिले ॥ ४० ॥

अथ ते विचार्य सुचिरं भोगभ्रष्टाः ममापतितकथाः ।

मिथ्यापरादनष्टा निफलङ्घिता मियां जग्मुः ॥ ४१ ॥

भोग से रहित (क्योंकि बालक अथवा बिराह में द्रव्य नहीं मिल सकता था); भारी विपत्ति का सामना करनेवाले, झूठे लाभध्वन के कारण नष्टप्राय व्यर्थ में ही कनेरा को प्राप्त होनेवाले वे पिट काफी देरतक परस्पर विचार करके चले गये ॥ ४१ ॥

जात्रान्नपटलदोषं विव नास्माभिर्भ्रजन्वणिगृष्टः ।

कट्हाल्यैव हृतोऽमागिन्यरदन्निर्गुदस्तत्र ॥ ४२ ॥

"आँग की पलकों में समुत्पन्न दापवालों की भाँति हम लोगों के द्वारा जाता हुआ कनिष्क पुत्र देखा नहीं गया । निश्चय ही 'कट्हाली' ने ही उसे छिपा रक्खा है ।" ऐसा 'निर्गुद' ने कहा ॥ ४२ ॥

राशिं निगूय यणिजं पश्यन् भूजेन निग्रहोऽस्माकम् ।

कुट्टन्यैव कृतोऽयं परिशोचन्नववीदिरिः ॥ ४३ ॥

"देखिये या वृद्धा राशिरूप बालक को भूर्जपत्रों से ढककर अर्धान् भूर्जपत्र के मटश नामूली बहाने से छिपाकर हम लोगों को परेशान कर रही है । निश्चय ही यह सब हमी कुट्टिनी का किया हुआ है ।" ऐसा अन्तर्मेम करने हुये 'दिरि' ने कहा ॥ ४३ ॥

विहिताङ्गहारयुक्तिः कुट्टन्या पूर्ववद्भयोऽप्यम् ।

अस्मन्मृतं घृतं किमन्यदिति नात्रवित्याह ॥ ४४ ॥

नाट्यशास्त्र के ज्ञाता 'चान्द' ने कहा—'यह जोर दूसरा क्या है? कुट्टिनी के द्वारा पूर्ववत् के चान्द यह बहनों के सञ्चालन अथवा बहनों को हार आदि से मञ्जित करने की युक्त की गयी है, जिनमें हम लोगों का यह मृत हुआ है' ॥ ४४ ॥

कपटतुलां कङ्कालोमङ्कयताङ्कामहं वेपि ।

विहिस्तया भ्रमोऽभावित्याह तुलाघरः कोपान् ॥ ४५ ॥

तुलाघर ने कोप करके कहा—'तैय्यों गहनों से युक्त कपटतुला की भाँति आचरण करनेवाली इस कङ्काली को मैं मली भाँति जानता हूँ । निश्चय ही इसने यह भ्रम फैलाया है' ॥ ४५ ॥

आकृष्य मेघभोगाद्भूतं मित्रमण्डलं वणिजः ।

कालकलयेव नीतं कङ्काल्या गणक इत्युच्यते ॥ ४६ ॥

ज्योतिषी सिद्धान्त ने कहा—'जिन प्रकार काल की कला (समय की गति) सूर्य-मण्डल को मेघ राशि के भांगने से हटा कर दूर अन्य राशियों पर ले जाती है उसी प्रकार इस 'कङ्काली' ने भी वन्य वणिक्-पुत्र की मित्रमण्डली को अर्थात् हम लोगों को खींचकर दूर कर दिया है, जिनसे हम लोग आनन्द-नौज (भोग) से वञ्चित हो गये हैं' ॥ ४६ ॥

पेया मयममृद्विस्तयैव साकृतचिकित्सायाम् ।

लहन्मिदमुपदिष्टं तापादित्यत्रवीर्यैः ॥ ४७ ॥

'विक्त' नामक वैद्य (वैद्यपुत्र होने के नाते वैद्य) ने कहा—'घाती मात्रा में मयपान करना चाहिये' ऐसी चिकित्सा उनके द्वारा की जाने पर अर्थात् चिकित्सा के रूप में पर्याप्त मयपान को बढ़ाने पर पुनः ताप (ज्वर) के बढ़ने के अनन्तर उसने ही यह उपवास बतलाया है' ॥ ४७ ॥

नवसुखचरितं नष्टं कष्टं विम्रष्टनियमवृत्तानाम् ।

अस्माकमेतदनुपममित्याह कविः घसन्विरसः ॥ ४८ ॥

लम्बी श्रृंखलेते हुए कवि 'विरस' ने कहा—“अष्ट नियम तथा वृत्त (छन्द) बाने (पश्चात्-अष्ट आचरणवाले) हम लोगों का नवीन-सुखों के द्वारा निमित्त यह अनुपम कष्ट नष्ट हुआ” ॥ ४८ ॥

टिप्पणी—यतः एतन् कथन कवि 'विरस' जो था है, अतः उस तथा एवो-द्रावक सुसंगत वाक्यरचना का अभाव अस्वामाविष्ट नहीं है ।

इति दुःखकोपविस्मयलज्जाकुलिताः कथां मिथः कृत्वा ।

इत्थुमारामभ्रष्टा इव मधुपास्ते विटाः प्रययुः ॥ ४९ ॥

दुःख, क्रोध, विस्मय (आश्चर्य) तथा लज्जा से आकुल वे विट, इन्हीं प्रकार की बात को परस्पर करके, इत्थुमित उद्यान से गिरे हुये अथवा भगाये गये भ्रमरों की भाँति चले गये ॥ ४९ ॥

अथ कङ्काली गूढं निःश्रव्यां काममोगमामग्राप् ।

आस्वाद्य निशामनयद्भिःशब्दमहोत्सवोत्साह ॥ ५० ॥

इसके बाद 'कङ्काली' ने द्विपेक्षी रूप से कष्टकरहित, कामोपमोग से प्राप्त सामग्री का अथवा अपनी इन्द्रासुमार भोगसामग्री का स्वाद लेकर के आनन्दमग्न हो सुवचन रात्रि को व्यतीत किया ॥ ५० ॥

प्रातर्विचिन्त्य पुक्तिं सा गत्वा इहभाण्डशालाग्रम् ।

कामिजनकस्य वणिजः स्कीतार्यसमृद्धिमद्रार्थात् ॥ ५१ ॥

पुक्ति को सोच करके, प्रातःकाल, उस कङ्काली ने बाजार में भाण्डशाला (पर्वत-घर) के सामने जाकर कामो उक्त वणिज्शालक के पिता की दिशाल धन-अल्पति को देखा ॥ ५१ ॥

तोऽपि महाधनसंचयलामविशेषेऽपि सद्वाहः ।

पुत्रद्वतहेनचिन्तासंतापात्कातरतरोऽभून् ॥ ५२ ॥

अभूत धन-अल्पति के एकत्रिंश रहने पर भी सदा संप्रदी यह वणिक्

अपने पुत्र के द्वारा चुराकर ले जाये गये सुवर्ण की चिन्ता से अति दुःखी हो रहा था ॥ ४२ ॥

उन्नतवृत्तीनिविष्टः कोटिग्रयलेख्यसंपुटीहस्तः ।

अर्थिजनवदनदर्शनमीलितनयनप्रसक्तसततान्ध्यः ॥ ५३ ॥

वह ऊँची धूपी (ऊन अथवा कुश आदि का पवित्र आसन) पर बैठा था । उनके हाथ में तीन करोड़ का दस्तावेज अथवा चेक था । पाचकों के खोलने एवं दिखलायी पड़ने से आँसु को दन्द् करने के कारण वह अन्धता का धारण करने हुये था अथवा पाचक की माँति न दिखलाई पड़ने के लिये (पाचक आँसु दन्द् करके अन्धा बनता है) आँसु को दन्द् करने के कारण अन्धता को वट प्राप्त था ॥ ५३ ॥

वन्धादिमोक्षणागतलाभपरित्यागयाचने वधिरः ।

अत्यल्पपण्यदानप्रश्नप्रतिवचनजल्पने मूकः ॥ ५४ ॥

जब लोग गिरवी रखी गई वस्तुओं को छुड़ाने आने थे और लाभ (सूद = व्याज) को कुछ कम करने की प्रार्थना करते थे तब वह बहुरा बन जाता था । जब लोग थोड़ा सा भी पण्यदान (यह वह दान है जिसे प्रत्येक दुकानदार धर्मार्थ देता है) के लिये कहने थे तो वह उनकी उत्तर देने में तूँगा बन जाता था ॥ ५४ ॥

तैलमलकललाञ्छितमूपकजग्धार्घटुप्पिकाविकटः ।

शीर्णोर्णाप्रावरणप्रलम्बघनकञ्चुकाञ्चलालोलः ॥ ५५ ॥

तेल की मेल और उसकी जट्टी से लाञ्छित (चिह्नित) तथा मूपक के द्वारा छुटरी गयी टोपी को धारण करने से वह विकट प्रतीत हो रहा था । उसने फटे उनी चद्दर के साथ ही काफी दूर तक लटकने वाले मोटे कुर्त्ता को भी पहन रक्खा था । कुर्त्ता के अग्रज के नीचे की ओर हिलने से वह चञ्चल हो रहा था ॥ ५५ ॥

नमोरुजानुजर्जरधूमारुणपृष्ठुलशिथिलमोचोटः ।

रुद्धश्मश्रुकलापस्थूलप्रचलत्तुम्पकग्रन्थिः ॥ ५६ ॥

वह एकदम फटी हुयी, धूँ से कुछ कत्यई रंगवाली अथवा धूम की मोँति कत्यई रंगवाली, बहुत मोटी तथा ढीली ढाली बिनाई वाली घोती पहने हुये था। उसकी यह घोती केवल जाँघ और घुटने भर मुखिल से थी। तेल के अभाव में रखे उसके दाढ़ी के बालों में मोटी मोटी, हिलनेवाली, लटें पड़ी हुयी थी ॥ ५६ ॥

निजगृहदिवसपरिव्यययाज्जागतकन्यकाप्रहारोयः ।

रज्जुप्रयितबुभुक्षितमार्जारीरारनिर्दयप्रकृतिः ॥ ५७ ॥

यह अपने घर के दिनभर के खर्च को माँगने के लिये आयी हुयी अपनी ही कन्या को मारने के लिए कुछ हो रहा था। रस्ती में बैठी हुयी पालतू पिल्ली की चिल्लाइट पर भी उसका पत्थर हृदय दयात्र नहीं होता था ॥ ५७ ॥

दूराद्वितर्पमाणः स तथा नासापिंताकुलीलतया ।

ख्यातः स एव वणिगयमिति रिदधे स निश्चितं तस्य ॥ ५८ ॥

अपनी नासिका पर अँगुली रस्ती हुयी (किसी बात को ध्यानपूर्वक विचारने की यह परमुद्रा है) उस कट्ठाली ने दूर से ही उस वणिक् के नियम में तर्कवितर्क करके यह निश्चय कर लिया कि निश्चय ही अपने घन के लिये रिख्यात यह वणिक् यही है ॥ ५८ ॥

साथ शनैरुपसृत्य प्रनिरलजननिर्मलानसरे ।

तमभापत भाण्डपते वक्तव्यं किंचिदस्ति मम रिजने ॥ ५९ ॥

भीड़ के समाप्त होने पर, जब कि थोड़े से व्यक्ति रह गये थे, उस कट्ठाली ने उस वणिक् के पास जाकर कहा—“भाण्डपते ! मुझे आप में एकान्त में कुछ कहना है ॥ ५९ ॥

पुनस्ते मुग्धमतिर्नृगशिशुरिव लुब्धर्नरिदः कृष्टः ।

हारितभूषणमनः संख्यायां सो मया दृष्टः ॥ ६० ॥

पहेलिये के द्वारा आकृष्ट किये गये मोले भाले हरिण के शिशु की मोँति, सरल बुद्धियाला आप का लड़का गिलों के द्वारा घड़कर ले

जाया गया । उन लोगों ने उसके आभूषण एवं वस्त्रों को छीन लिया था । उसके बाद मैंने उसे देखा ॥ ६० ॥

दयया प्रवेक्षितोऽसौ मया स्वगेहं मनोहराकारः ।

अविश्रुक्ष्णं न जाने केन पया मत्सुनाहृदयम् ॥ ६१ ॥

सुन्दर आकारवाले उस लड़के को मैंने दया आने के कारण अपने घर में धुला लिया था । मुझे पता नहीं कि किस भाग से अर्थात् किस भाँति वह मेरी पुत्री के हृदय में क्षण भर के लिये प्रविष्ट हो गया न जाने क्यों मेरी पुत्री ने उमका बहुत प्यार किया ॥ ६१ ॥

स तथा त्मानानन्तरस्चिराम्बरभूषणार्पणप्रणयैः ।

राजार्हविनिधभोगैः काम इगम्यर्चितो मक्त्या ॥ ६२ ॥

उसने (मेरी पुत्री ने) उस बालक का स्नान कराकर वे सुन्दर वस्त्र एवं आभूषण पहनाया तथा राजाओं के योग्य विविध प्रकार के भोजन आदि से भक्तिपूर्वक, कामदेव की भाँति, उसकी सेवा की ॥ ६२ ॥

वंशजगौरवयोगात्सुवृत्तताश्चान्यरूपसंभारः ।

कण्ठे हार इगर्सा कृतमृत्या गुणगणोदारः ॥ ६३ ॥

पूर्वजों की महत्ता के कारण सुन्दर आचरण के योग से अत्यधिक प्रशसनीय स्वरूपवाला, प्रशस्त गुणगणों के होने से उदार वह बालक उसके द्वारा अपने कण्ठ का हार सा कर लिया गया है ॥ ६३ ॥

कायपणार्जितमहुविधराजमुतामात्यमहुधनेन सह ।

अधुना त्वत्तनयोऽस्याः स्वामी प्राग्जन्ममनन्धात् ॥ ६४ ॥

शरीररूपी मृत्यु से बहुत से राजपुत्रों एवं अमात्यों के अर्चित किये गये अत्यधिक धन के साथ ही तुम्हारा पुत्र पूर्वजन्म के सन्ध के कारण इस समय मेरी पुत्री का स्वामी हो गया है ॥ ६४ ॥

उचिततरसङ्गसुभगां [दृष्ट्वैव] कलानतीं रागयाननोन्मत्ताम् ।

तव हस्ते निक्षिप्तं स्त्रीधनमदितं मया गेहम् ॥ ६५ ॥

तुम्हारे पुत्र के अत्यधिक योग्य सङ्गम से सुभग (सौभाग्यशालिनी), अनुराग एवं यौवन से उन्मत्त कलावती को देखकर ही मैंने स्त्री (कलावती) और घन के सहित अथवा स्त्रीघन (बेरयावृत्ति से अर्जित घन) के सहित घर को तुम्हारे हाथ में समर्पित कर दिया है ॥ ६५ ॥

यातायां मयि तीर्थं कंचित्कालं त्वया कलावत्याः ।

मुद्रामुद्रितमखिलं सर्वस्य पालनीयं तत् ॥ ६६ ॥

कुछ समय के लिये मुझे तीर्थयात्रा के हेतु चली जाने पर आपको कलावती की मुहर लगी हुई सम्पूर्ण सम्पत्ति की रक्षा करनी चाहिये ॥ ६६ ॥

अथ तु भवता कार्यः पुत्रस्नेहास्तुपानुरोधाच्च ।

अस्मद्गोहे स्तल्पो भोज्योत्पन्नमङ्गलाचारः ॥ ६७ ॥

आन तो आपको अपने पुत्र के स्नेह तथा पुत्रधू (कलावती) के अनुरोध से हमारे घर में थोड़ा भोज्योत्पन्न रूप मङ्गलाचार करना चाहिये ॥ ६७ ॥

उन्त्वेति साश्रुनयना कङ्काली तस्य वज्रहृदयस्य ।

निपपात चरणयुगले सुतलाभरिषेपतुष्टस्य ॥ ६८ ॥

ऐसा कहकर अपनी आँखों में आँसू भरती हुयी कङ्काली, अपने पुत्र के मिल जाने से अतिप्रसन्न, वज्र के समान हृदयवाले उस वणिक् के चरणों पर गिर पड़ी ॥ ६८ ॥

स च तामुवाच भद्रे मर्यामिदं हर्षकारि कुशलतरम् ।

किं ॥ त्यद्रमनं मे नाभिमतं सह गमिष्यामः ॥ ६९ ॥

उस वणिक् ने कङ्काली से कहा—“भद्रे ! यह सच प्रसन्नता प्रदान करनेवाला बहुत बड़ा कन्याण है । किन्तु तुम्हारा जाना मुझे अभीष्ट नहीं, हम दोनों साथ ही चलेंगे ॥ ६९ ॥

परभोजननियमयता भोक्तव्यं तद्गृहे कथं नु मया ।

संभोजनमृत्युं मे गृह्णासि तदा गमिष्यामि ॥ ७० ॥

मेरा नियम है कि मैं दूसरे के घर भोजन नहीं करता । ऐसी

अवस्था में मैं तुम्हारे घर कैसे भोजन कर सकता हूँ ? यदि तुम मुक्त से सुन्दर भोजन खिलाने का मूल्य ग्रहण करोगी तभी मैं चढ़ूँगा ॥ ७० ॥

इत्युक्त्वास्या हस्ते दत्त्वा दृष्टः स रूपकं सार्धम् ।

सामन्तः स्मितवदनां त्रिसृज्य पद्माद्ययौ भोक्तुम् ॥ ७१ ॥

ऐसा कहकर कङ्काली के हाथ पर, प्रसन्नतापूर्वक, टेढ़े रुपये देकर, भीतर ही भीतर प्रसन्नवदनवाली उस वृद्धा को बिदा करके बाद में भोजन करने के लिये स्वयं वहाँ गया ॥ ७१ ॥

तत्र सुतं सविलासं दृष्ट्वा कान्तासनायसंभोगम् ।

निर्व्ययभोज्यसमृद्ध्या निश्चिन्तः प्रीतिमानमवत् ॥ ७२ ॥

वह वहाँ पर स्त्री के साथ सुन्दर-सुन्दर पदार्थों का भोग करते हुये, विलासमग्न अपने पुत्र को देखकर निश्चिन्त और बहुत प्रसन्न हुआ । उसकी प्रसन्नता इसलिये और अधिक थी कि वहाँ पर उसके पुत्र के लिये बिना कुछ व्यय किये ही भोजन के पदार्थों का टेर लगा हुआ था ॥ ७२ ॥

कर्पूरैलापरिमलरमयामितयिविधभोजनं भुक्त्वा ।

पीत्वा च भूरि मद्यं जगाद लुब्धः स कङ्कालीम् ॥ ७३ ॥

कर्पूर, इलायची आदि के सुगन्धित रस से वासित बहुत प्रकार के भोजन को खाकर और पर्याप्त मदिरा भी पीकर वह लालची वणिक् कङ्काली के पास गया ॥ ७३ ॥

मत्तं दिनव्ययं चः सर्वमहं समुचितं प्रदास्यामि ।

एवंविधस्तु न पुनः कार्यः स्थूलव्ययारम्भः ॥ ७४ ॥

“मैं सर्वदा आपलोगों के सम्पूर्ण मनुचित दिन खर्च को दूँगा । किन्तु आप लोग पुनः इतने अधिक व्यय से होनेवाले इस प्रकार के समारोह को न करें” ॥ ७४ ॥

इत्युक्त्वा स गृहं निजमगमद्गगनस्थलीकृषिकृताग्रः ।

लामप्रदर्शनं किल लुब्धघियां वञ्चनोपायः ॥ ७५ ॥

ऐसा कहकर “आकाश में खेती करने की आशा करनेवाला” अर्थात् लसम्भव बात की आशा करनेवाला वह व्यक्ति अपने घर को चला गया । निम्न ही लोभी व्यक्तियों को ठगने का सर्वोत्तम उपाय पहले उन्हें किसी प्रकार के लाभ को दिखलाना ही है ॥ ५५ ॥

अन्येद्युर्दिवसव्ययमानेतुं कुटिलचेतसस्तस्मात् ।

चित्तग्रहणाय निजां निसमर्ज कलावती दामीम् ॥ ७६ ॥

दूसरे दिन शठचित्तवाने उस व्यक्ति से दिन स्वर्च को लेने के लिये तथा उसके चित्त को लुमाकर बरा में करने के लिये कलावती ने अपनी दासी का भेजा ॥ ७६ ॥

सुचिरात्ममेन्य दामी शरावचञ्चन्सहिङ्गुकणभूर्जा ।

हस्तेन निस्फुटन्ती कलावती सस्मितामयदत् ॥ ७७ ॥

काफी देर के बाद, एक सराव (कसोरा) में इयर-उधर हिलने वाले हिङ्गु-कणों के साथ भूर्जपत्र को लिये दूयो दासी ने बाहर के हाथ मटका मटका (दिला दिला) कर प्रसन्न मुखवाली कलावती से कहा ॥ ७७ ॥

श्वशुरेण ते महार्घः प्रहितोऽयं भूरिभोज्यमंभारः ।

उत्तिष्ठ कुरु विभागं निमन्त्र्यतां बन्धुरगर्थ ॥ ७८ ॥

“आप के श्वशुर जी ने यह बहुमूल्य तथा पर्याप्त मात्रा में सामग्री के भार को भेजा है । उठिए, इसका वितरण कोनिए और भाई-बन्धुओं को निमन्त्रण दीजिए ॥ ७८ ॥

तैलस्य तौलकमिदं तौलकयुगलं च चूर्णलक्षणस्य ।

दत्त्वा मामिदमूचं श्रुटीकुटिलाननः स परम् ॥ ७९ ॥

एक तोला भर तेल तथा दो तोला नमक देकर आँसु के धरने से अपने मुँह को कुटिल बनाकर उन्होंने मुझसे कहा ॥ ७९ ॥

तैलमिदं लक्षणमिदं शाकाय धेतिकाद्वयं दत्तम् ।

वेद्यायाः क्रिं कामी ददाति दिग्मव्यये लक्षम् ॥ ८० ॥

मैंने यह तेल और नमक तथा शाक (सज्जी) के लिये यह दो कौड़ी दी है । कोई कामी किसी चेश्या के दिन-खर्च के लिये क्या एक लाख देता है ?" ॥ ८० ॥

इत्युक्त्वा तत्प्रहितं दासी संदर्श्य धूतकृतं बहुशः ।

क्षिप्त्वा दूरे तन्मुखदर्शनमलिनां निनिन्द दृशम् ॥ ८१ ॥

ऐसा कहकर उस बणिक् के द्वारा भेजे गये बहुत अधिक धूतकृत (धूँक, सत्तार आदि) को दिखलाकर, उसे बाहर फेंककर, दासी ने उसके मुख को देखने मात्र से मलिन अपनी आँखों को धिक्कारा ॥ ८१ ॥

अन्येद्युः कङ्काली विचिन्त्य तदञ्चने सुखोपायम् ।

प्रययौ कृत्वा विजने कलावतीं विदितवृत्तान्ताम् ॥ ८२ ॥

दूसरे दिन, उस बणिक् का आसानी से ठगने के उपाय को सोचकर तथा एकान्त में कलावती को सम्पूर्ण याजना बतलाकर वह 'कङ्काली' बणिक् के पास गई ॥ ८२ ॥

सा वर्णमानमुद्रासदृशसमुद्गद्वयं विधाय नवम् ।

एकस्मिन्नाभरणान्यन्यस्मिन्नुपलखण्डिकां विदधे ॥ ८३ ॥

जमने रङ्गीन (पालिमदार) अथवा ठोठ गन्मुद्रा (तील की मुद्रा=पाय, सेर आदि) के सदृश दो नवीन समुद्र (हीरा, जवाहिरात रखने का छोटा बाक्स) बनवाया तथा एक में आभूषणों को रक्खा और दूसरे में पत्थर के टुकड़ों को ॥ ८३ ॥

स्यूतरत्नपटिकाप्रावरणं प्राप्य भाण्डशालाग्रम् ।

सा कलाञ्चलसंयुतसमुद्गप्रगलावदद्वणिजम् ॥ ८४ ॥

अपने कक्ष (काँस) के अञ्चल से दोनों समुद्र को ढके हुयी उस 'कङ्काली' ने भाण्डशाला के सामने अत्यन्त मोटी रुई की पट्टी के चैष्टन को (रुई के पड़ले को) प्राप्त करके बणिक् से कहा ॥ ८४ ॥

टिप्पणी—यहाँ यह ध्यान रखना चाहिये कि रुई का पट्टी का वह चैष्टन ही कङ्काली को दोनों समुद्र को बदला-बदली करने में सहायक होगा ।

वाराणसीप्रयाणे नक्षत्रं क्षिप्रकृन्ममोषनतम् ।

नास्ति पुनर्वसुना तत्र दर्शनमात्रं मयि गतायाम् ॥ ८५ ॥

वाराणसी की मेरी यात्रा के लिये अतिशीघ्र ही मुझे मुद्रित प्राप्त हुआ है अर्थात् यात्रा का मुद्रित बहुत शीघ्र ही आने वाला है । यदि उस नक्षत्र (मुद्रित) को छोड़कर मैं पुनर्वसु नक्षत्र में जो उसके बाट्र आने वाला है, यात्रा करती हूँ तो जाने के बाट्र लौटकर मैं आप का दर्शन न कर सकूँगी (उस नक्षत्र में यात्रा से या तो यात्रा करनेवाला मरता है अथवा उसका मित्र) अथवा धन लेकर यात्रा करने से मैं लौटकर आपका दर्शन न कर सकूँगी (क्योंकि धन-लोलुप व्यक्ति मुझे मार डालेंगे) ॥ ८५ ॥

टिप्पणी—पुनर्वसु में यात्रा करने से अनिष्ट होने की बात धूर्त वेरदा की वृत्ति होने से प्रमाण नहीं मानना चाहिये ।

इदमाभरणं सर्वं समुद्रगकन्यस्तमस्ति रत्नाङ्कम् ।

स्त्रीगालघनं मयता प्राणसमं सर्वथा रक्ष्यम् ॥ ८६ ॥

रत्नजटित यह हंसम्पूर्ण आभूषण इस समुद्र में रक्षित हुआ है । यह स्त्री (कलावती) और बालक (वणिकपुत्र) का धन है, अतः आप इसकी प्राणों की रक्षा करेंगे ॥ ८६ ॥

इत्युन्वा तत्परं मन्दर्प्य पुनः समुद्रितं कृत्वा ।

निक्षिप्य पुरः प्रचुरं सा तमवादीत्सहेलैः ॥ ८७ ॥

ऐसा कहकर, उन सम्पूर्ण आभूषणों को दिसलाने के अनन्तर पुनः भली भाँति उसी समुद्र में बन्द करके उस वणिक के सामने रख कर उसमें हँसी में ही कष्टाली ने कहा ॥ ८७ ॥

पाथेयमतः पृष्टालाभे न ममोषयुज्यते लक्षम् ।

त्वं दातुमर्हसि मये देगालयघान्यभुक्तिमंशोष्यम् ॥ ८८ ॥

“किसी अन्य प्रकार के लाभ न होने से (तीर्थयात्रा में अन्य

प्रकार के किसी भी लाभ की संभावना न होने से) मुझे देवालयों में लाये गये पदार्थों के मूल्य को चुकता करके के योग्य एक लाख राह-सर्च (मार्गन्वय) अपेक्षित है। अतः मित्र ! मुझे एक लाख मुद्रा देने की कृपा करें” ॥ ८८ ॥

इति लीलया ब्रुवाणा समुद्रगयुगलस्य विनिमयं कृत्वा ।

लक्षं क्षणाद् गृहीत्वा जगाम निजवेश्म कङ्काली ॥ ८९ ॥

लीलापूर्वक इस प्रकार कहती हुई कङ्काली ने दोनों समुद्र का अदला-बदली करके अर्थान् पत्थर के टुकड़ों से भरे हुये समुद्र को वणिक् के सामने रखकर और आभूषणवाला स्वयं लेकर क्षण भर में ही एक लाख मुद्रा ग्रहणकर अपने घर को चली गयी । ॥ ८९ ॥

टिप्पणी—यहाँ एक ध्यान रखना चाहिये कि ‘कङ्काली’ ने पहले वणिक् को केवल आभूषण वाला ही समुद्र दिखलाया था ।

अथ निर्वर्तितकृत्यां ज्ञात्वा तामागतां वणिग्भवनात् ।

शङ्खसुतं हर्म्यगता प्रोवाच कलावती विजने ॥ ९० ॥

उस वणिक् के घर से अपना कार्य पूर्ण करके कङ्काली को आयी हुयी जानकर कलावती ने कोठेपर-द्वारपर-जाकर एकाग्रता में ‘शङ्ख’ के लड़के (वणिक् पुत्र) से कहा ॥ ९० ॥

त्वयि मे हृदयमकस्मादन्तः सक्तं बलान्न निर्पाति ।

त्वं तु धनवान्विवाहं करिष्यसीत्येव मे शङ्का ॥ ९१ ॥

मेरा हृदय तुम में पूर्णरूप से लीन हो गया है, अतः बलपूर्वक निकालने पर भी नहीं निकल रहा है। किन्तु मुझे एक ही शङ्का है—तुम धनवान् हो अतः विवाह कर लोगे ॥ ९१ ॥

दिनरमणीयः पुंसां जन्मजघन्यस्तु गेहिनीमङ्गः ।

तदपि विवाहे मोहादविचारतरादराः पशवः ॥ ९२ ॥

पुरुषों या गृहिणी के साथ सङ्गम जन्म से ही जघन्य एवं एक दिन तक अर्थान् स्वल्पकाल तक ही रमणीय है। तो भी (मोहवश)

पशुओं के सभान अविचारी पुरुषवर्ग विवाह के विषय में आग्रह करते हैं ॥ ६२ ॥

नित्यप्रवृत्तिहतसुस्थिरयावनेषु

वेशोपचाररहितेषु मदोज्झितेषु ।

गोष्ठीविलासरसकेलिनिरादरेषु

दारेषु का स्मररुचिः कलहाङ्कुरेषु ॥ ९३ ॥

नित्य ही बधा पैदा करने से विनष्ट यौवनवाली, वेशप्रसाधन से रहित अर्थात् वेश को आकर्षक बनाने की कला से अनभिज्ञ, मदहीन, सामाजिकों की गाँधी में होनेवाले विलास की रसकेलि का विरस्कार करनेवाली, कलह के मूल, गृदिणियों में भला पुरुषों की कैसे कामरुचि (सम्भोग-सम्बन्धी अभिलाषा) हाती है ? ॥ ६३ ॥

जात्यैव कामिजनरञ्जनजीवितासु

वेशोपचारनिरतासु ममोरमासु ।

कामप्रमोदममकासु सविभ्रमासु ।

वैश्यासु कस्य न रतिः सततस्मितासु ॥ ९४ ॥

जाति से ही कामिनों का मनोरञ्जन करके जीवित रहनेवाली, वेश-भूषा को लुभायना बनाने में संतप्त रहनेवाली अथवा पुरुषों को मूर्च्छित करनेवाले धान व्यवहार में निरत रहनेवाली, सुगन्धित, काम-प्रमोद में विदग्ध, हास भाव आदि से परिपूर्ण, सर्वेश हैंसमुख वैश्याओं में भला किम की रति (प्रेम) न होगी ? ॥ ६४ ॥

कुरु मे प्रन्पयहेतोर्धनधारणपत्रिकां त्रिवहे [त्त्रयम्] ।

निहिता सैव तगास्ते मत्तमत्रस्याङ्कुशशिखेय ॥ ९५ ॥

तुम त्रिवह (अग्नि की सात जिह्वाओं में एक का नाम) के आधार पर अर्थात् अग्नि की साक्षी में मेरे विश्वास के लिये धन-धारण पत्रिका (धर्म लेने का दस्तावेज, कदा) निरूप दो । लिखी गयी वह पत्रिका

ही, मत्तगज को वश में करने के लिये अङ्गुश की नोक की भाँति, तुम्हें वश में करने के लिये मेरे पास साधन होगी ॥ ६५ ॥

इत्युक्तः स रमण्या स्थूलतरोज्जासपत्रिकामलिखत् ।

नाम्ना विक्रमशक्तेर्नृपमहिषीभ्रातृपुत्रस्य ॥ ९६ ॥

उस रमणी के द्वारा इस प्रकार कहे गये उस वणिक्-पुत्र ने राजरानी के भ्रातृपुत्र 'विक्रमशक्ति' के नाम से एक बहुत बड़ी उज्जास-पत्रिका अपने को बँधाने के लिये (विनाश के लिये—ऋण-पत्रिका) लिख दी ॥ ६६ ॥

अथ शय्याभवनगतं प्रातः स्वयमेत्य कङ्काली ।

जामातरमिदमवदन्मिथ्यैव सखेदवदनेव ॥ ९७ ॥

इसके अनन्तर प्रातःकाल जब कि वह वणिक्-पुत्र शयन करने के कमरा (कक्ष) में स्थित था, झूठे ही अपने मुँह को लटकाये हुयी सी 'कङ्काली' ने उससे कहा ॥ ६७ ॥

आसन्नयौवनस्त्वं दुहितुर्मे यौवनं त्वया प्रायः ।

क्षपितमलक्ष्यं स्त्रीणां गलति हि सहस्रैव तारुण्यम् ॥ ९८ ॥

तुम्हारी जवानी अब शीघ्र ही आने वाली है। तुम्हने मेरी पुत्री की युवावस्था को प्रायः समाप्त कर दिया है, क्योंकि स्त्रियों की तरुणाई सहसा इस प्रकार से समाप्त हो जाती है कि उसे कोई देख भी नहीं पाता ॥ ६८ ॥

स्थिरयौवनाः प्रकृत्या पुरुषाः किल तालसालसंकाशाः ।

सः कन्यकाद्य तरुणी प्रातर्दृष्ट्वा भवत्येव ॥ ९९ ॥

ताल एवं साल (दोनों ही वृक्ष विशेष हैं) के महस पुरुष लोग निश्चय ही स्वमायतः स्थायी युवावस्थावाले होते हैं अर्थात् पुरुषों को यौवन अधिक दिन तक टिकाऊ होता है। किन्तु स्त्रियों के प्रिय में क्या कहें ? जो अभी कल कन्या थी वह आज तरुणी हो जाती है और जो आज तरुणी है वही फल वृद्धा हो जाती है ॥ ६९ ॥

मासादधिकायातं दिनद्वयं पुष्पदर्शनस्नाने ।

अथैव कलावत्या गर्माशङ्काकुलं चेतः ॥ १०० ॥

रजस्वला होने के अनन्तर स्नान किये हुये कलावती को एक महीने से केवल दो दिन अधिक बोलते हैं, किन्तु आज ही उसका चित्त गर्भ रह जाने की आशङ्का से व्याकुल हो उठा है ॥ १०० ॥

यौवनप्रभ्रमशापस्तनुनलिनीतुहिननिकरघनपातः ।

प्रमथदिनं नारीणां पातकमुग्रं स्तनयुगस्य ॥ १०१ ॥

स्त्रियों के प्रसव का दिन उनके यौवन के सौन्दर्य के लिये श्राप है, उनकी शरीररूपी कमलिनियों के लिये तुषारसमूह की धारासार वृष्टि है और उनके दोनों स्तनों का उग्र पाप है अर्थात् प्रसव स्त्रियों के यौवन शरीर-सौन्दर्य पर स्तनद्वय का सहारक है ॥ १०१ ॥

प्रसवहृत्यौवनानामघोमुखे लज्जयेत् कुचयुगले ।

भवति न पण्यवधूनां विक्रयचर्चा वृणेनापि ॥ १०२ ॥

प्रसव होने से समाप्त यौवनवाली चेरयाओं के दोनों स्तन मानो लज्जा के कारण नीचे की ओर मुक्त करके लटक जाते हैं, और उन्हें कोई वृण देकर भी खरीदने की चर्चा नहीं करता ॥ १०२ ॥

स्थविरत्वे पुरुषाणां भवन्ति मुसजीविकाः परिज्ञानैः ।

यौवननाशे चेदया यदि परमदति स्फुटं भिक्षाम् ॥ १०३ ॥

पुरुष लोग अपनी वृद्धावस्था में अपने गम्भीर ज्ञान के माध्यम से मुख्यपूर्वक जीविका प्राप्त कर लेते हैं, किन्तु चेरयाएँ अपनी युवावस्था की परिष्ठमात्र पर केवल इधर-उधर भ्रमण करके भिक्षा ही माँगती हैं ॥ १०३ ॥

तस्माज्जनकामायादविकलमापत्स्यमाननिजप्रियम् ।

अधिरुणपत्रलिखितं प्रयच्छ सुमते कलारत्यै ॥ १०४ ॥

अतः हे सुमते ! अपने पिता के न रहने पर प्राप्त होनेवाली अपनी

११ स० मा०

सम्पूर्ण सम्पत्ति को अधिकरणपत्र (दस्तावेज) पर लिखकर कनारजी को समर्पित कर दो ॥ १०४ ॥

इत्युक्ते हुङ्ग्या मोत्माहः ग्रीतये वणिक्कनयः ।

आपत्स्यमानमखिलं प्रददां हृष्टः कलावत्यै ॥ १०५ ॥

हुङ्गिनी के द्वारा ऐसा कहने पर उस वणिक्पुत्र ने बड़े बत्साह और हर्ष के साथ कलावती की प्रसन्नता के लिये अपनी उन सम्पूर्ण सम्पत्ति को लिखकर उसको समर्पित कर दिया जिसका वह उत्तराधिकारी था ॥ १०५ ॥

अथ शिथिलादरया[म]द्वित्रैर्दिवसैः ममेत्य कङ्काल्या ।

कृतसंकेतः कङ्कः श्रुत्य कलावतीमृचे ॥ १०६ ॥

जब उस बालक ने प्राप्त होने वाली अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति भी लिख दिया तब कङ्काली ने इसका आश्चर्य मान कम कर दिया । अभी उक्त पत्र को लिखे केवल दो-तीन ही दिन बीते होंगे कि 'कङ्काली' के द्वारा संकेत प्राप्त करके बालक को मुनाते हुए 'कङ्क' ने कनारजी से कहा ॥ १०६ ॥

अपि रागदग्धहृदये कलावति व्रतवतीव कस्य स्वप्न ।

एष त्वामर्षयते ठक्कुरपुत्रो रणविलासः ॥ १०७ ॥

“अनुराग से दग्ध हृदयवाली हे कलावति ! तुम किस व्यक्ति के लिये व्रतधारण करनेवाली (पतिव्रता-व्रत धारण करके अन्य के साथ रमण न करनेवाली) सी हो ? यह ठक्कुर का पुत्र 'रणविलास' (रण में शीघ्र प्रदर्शित करनेवाला) उन्हें चाह रहा है ॥ १०७ ॥

देवगृहगजदिविरस्तव मततप्रार्थनानुरन्धेन ।

पदमुक्तिवन्यकाले गणयति चण्टं मकरगुम् ॥ १०८ ॥

देवगृह (मन्दिर) का 'मकरगुम्' नामक कोपाग्रस्त, संनैर्गार्य, तुन्दारी निरन्तर प्रार्थना करने से, देवगृहाध्यक्ष को क्रुद्ध समझकर

अपनी पदमुक्ति के काल को भी धन्य समझता है अथवा आनन्द के लिये (तुम्हारे साथ संमोगरूप आनन्द के लिये) पदमुक्ति से धन्यकाल में उत्कण्ठापूर्वक समय गिन रहा है ॥ १०८ ॥

अद्यापि महामात्यः सत्यरथस्त्वत्कृते समर्पदिने ।

ग्रहिणोति वस्त्रयुगलं न च प्रसादस्त्वयास्य कृतः ॥ १०९ ॥

आज भी इस महर्घता (महँगी) के दिन में महामन्त्री 'सत्यरथ' (सत्यपथ पर ही चलने वाले) तुम्हारे लिये दो वस्त्र-भेज रहे हैं किन्तु आज तक तुमने इन पर कभी कृपा नहीं की है अर्थात् अपने साथ सहवास का अवसर इन्हें नहीं प्रदान किया है ॥ १०९ ॥

प्रेक्षणके त्वां दृष्ट्वा साहसराजेन राजपुत्रेण ।

त्यद्गत[स]रमसमनसा वासवसेनावरुद्धिका त्यक्ता ॥ ११० ॥

झरोखे पर बैठी हुई तुम्हें देखकर राजा के लड़के "साहसराज" (शूरता के अधिपति) का मन तुममें आसक्त होकर कामातुर हो उठा । परिणामस्वरूप उन्होंने अपनी प्रेयसी 'वासवसेन' का परित्याग कर दिया है ॥ ११० ॥

विरजसि वयमि नवेऽस्मिन्नेकप्रेदीप्सितस्तव स्यामी ।

तत्किं यौवनमङ्गे ददाति कश्चिद्भनं मुग्धे ॥ १११ ॥

हे मुग्धे ! इस नवीन निरपरी हुई अवस्था में यदि तुम्हें एक ही व्यक्ति, जिसे तुम अपना स्यामी समझती हो, अभीप्सित हो, अथवा एक ही स्यामी अभीप्सित है, तो क्या युवावस्था के बीत जाने पर कोई तुम्हें धन देगा ? ॥ १११ ॥

याभिर्पौत्रनसमये रागेण धनार्जनं परित्यक्तम् ।

ता एताः पर्यन्ते भस्माद्भयर्थावरिण्यथ ॥ ११२ ॥

जिन्होंने अपनी युवावस्था के समय में केवल एक ही व्यक्ति में ही प्रेम करके धन के अर्जन का परित्याग कर दिया था, वे ही वे

वेरपायें तुम्हारे धान में ही शरीर में अस्म पोते तथा चिथड़े को धारण किये मारी-मारी घूम रही हैं ॥ ११२ ॥

कुचकाञ्चनकलश्रयती नितम्बमिहाभना म्मितच्छत्रा ।

एकपुत्तपोपसेव्या नूनं त्वं रतिरमणराज्यश्रीः ॥ ११३ ॥

कुचरूपी सुवर्ण के कमरा को धारण करनेवाली, नितम्बररूपी राज-
सिंहासनवाली, मुक्कुरादृटरूप राजद्वार को धारण करनेवाली तथा एक
पुरुष के उपभोग के योग्य तुम निम्न ही काम की राज्यश्री हो ॥ ११३ ॥

भुक्तं मयास्य वित्तं दाक्षिण्यमिति प्रनष्टविभवेऽपि ।

मा त्वं कृपाः क्षुमस्ये ह्यो भुक्तं नाद्य तृप्तिकरम् ॥ ११४ ॥

हे सुन्दर कटितटवाली कन्यायनि । 'मैंने इतका धन खाया है'
ऐसा सोचकर निर्धन व्यक्ति मैं भी तुम दशरता भव करना; क्योंकि कम
का खाया हुआ पणार्थ आज तृप्तिकरक नहीं होता ॥ ११४ ॥

दासी दासी तावद्यावत्पुरुषस्य किञ्चिदस्ति करे ।

क्षीणधनपुण्यराशेर्दुष्प्रापा स्वर्गनगरीव ॥ ११५ ॥

दासी तभी तक दासी है जब तक कि पुरुष क हाथ में कुछ है ।
धन के नष्ट हो जाने पर वर (दासी) उसी प्रकार से दुर्लभ हो
जाती है जैसे—क्षीणपुण्य वाले व्यक्ति को स्वर्गनगरी ॥ ११५ ॥

ह्योदत्तार्थं कथमिर गच्छाम्यद्येति निरन्तरे प्रायम् ।

कः कुरुते वेश्यानां तत्क्षणधनदानमोग्यानाम् ॥ ११६ ॥

“फल धन देकर व्याज कैसे जाऊँ” ऐसा सोचकर तत्काल धन

देकर सम्भोग-पात्र वेरयाओं के पास कौन व्यक्ति निवास करने की बुद्धि करेगा ?" ॥ ११६ ॥

इति कङ्कवदननिर्गतवचनश्रुर्दारितो वणिक्तनयः ।

निश्चेष्टः क्षणममवर्द्धलक्ष्याद्वीक्ष्यमाणः स्माम् ॥ ११७ ॥

इस प्रकार से 'कङ्क' के मुख से निकलने हुये वचनरूपी वाणों से विदीर्ण किया गया वणिकपुत्र तज्जा के कारण पृथिवी को देखने हुये क्षणभर के लिये निश्चेष्ट—किञ्चित्तन्यविनूद—हो गया ॥ ११७ ॥

अथ शूलपन्थुनिधनव्यमनाद्यङ्गप्रसङ्गकयनाद्यैः ।

शय्याप्रहारमकरोन्कलावती शङ्खतनयस्य ॥ ११८ ॥

इसके अनन्तर "आज मेरे शरीर, मैं मीथण पीड़ा है, आज मेरा अमुक सन्बन्धी मर गया है अतः बड़ा कष्ट है" इसी प्रकार के अनेक शारीरिक तथा मानसिक कष्टों को कह करके कलावती ने 'शङ्ख' के पुत्र उस बालक के माथ एक शय्या पर शयन आदि कार्य का परित्याग कर दिया ॥ ११८ ॥

अथ व्रतनियमो मे दुःस्वप्ननिरीक्षणात्परं मातुः ।

पट्टीप्रजागरेऽद्य च राजकुले तत्र मे शय्या ॥ ११९ ॥

"सद्यः स्वप्न देखने के कारण आज मैं नौ दुर्गा का व्रत कर रही हूँ। आज पट्टी का जागरण है अतः राजकुल ने ही मुझे रहना और सोना होगा ॥ ११९ ॥

अथ वयस्यानूनायूडाकरणं मृगाङ्गदत्तस्य ।

इत्यादिमिरपदेशः सा प्रदयी कामिनां मयनम् ॥ १२० ॥

आज मेरी मर्मा के पुत्र 'मृगाङ्गदत्त' का चूडाकरण सम्भार है ।" इसी प्रकार के बहुत से बहाने बनाकर वह (कलावती) कामिनों के घरों को जाती थी ॥ १२० ॥

त्वरिता ततः प्रभाते कदाचिदस्येन्य कम्पविकलाह्नी ।

कङ्काली शङ्खमुनं जगाद मयसंभ्रमात्तेन ॥ १२१ ॥

उसके बाद किसी समय प्रातः काल भय के वेग से विक्रम की माँति, कल्प के कारण विह्वल अङ्गवाली 'कङ्काली' बड़ी शीघ्रता ने 'शङ्खपुत्र' उस बालक के पास जाकर बोली ॥ १२१ ॥

उत्तिष्ठपुत्र तूर्णं ब्रजदत्ता शिरमिच्छिदविभाव्यम् ।

अस्मत्कृतेऽयं यूनाः सपत्न्यल्लहे बधो वृत्तः ॥ १२२ ॥

'हे पुत्र ! उठो, अपने शिर पर कोई ऐसी चीज रख लो जिससे तुम पहचाने न जा सको और अतिशीघ्र यहाँ से चले जाओ । आइ हमारे लिये (कलावती के लिये) सपत्न्यल्लह मैं (एक ही पत्नी के लिये होनेवाले कलह मैं) दो युवकों का बध हो गया है ॥ १२२ ॥

नगरपतिर्विषमतरः कलावती मित्रमन्दिरं याता ।

त्वं तु वणिक्सुत साधुर्धनगन्धे धावति क्षमापः ॥ १२३ ॥

नगर का शासक अत्यन्त भयङ्कर है । कलावती 'अपने मित्र के घर चली गयी है । हे वणिक्सुत ! तुम तो बड़े माधु हो जो अभी तक नहीं गये । शीघ्र चले जाओ, क्योंकि राजा (शासक) धन की गन्ध पर दौड़ता है अर्थात् धन बसूल करने के लिये धनी त्यन्त्रि को ही पकड़ता है ॥ १२३ ॥

तुलपटौ त्यज पृष्ठाद् गृहाण तस्तीं (?) परदृमालातः ।

को जानीते वर्तमानि किं कुर्वते कः परित्राय ॥ १२४ ॥

सूती कपड़ों को छोड़ दो । छत पर रखी हुई परदृमाला (रद्द) से लेकर के कन्बल के टुकड़ों को पहन लो । कौन जाने भागें न कोई तुम्हें पहचान कर क्या करे ॥ १२४ ॥

इत्युक्ते कङ्काल्या मिथ्यैव विशल्यवेदमकरणाय ।

कृत्वा तदुक्तमखिलं पङ्कः प्रयया कुमार्गेण ॥ १२५ ॥

अपने घर को दण्डवत् नमस्कार करने के लिये 'कङ्काली' के द्वारा झूठे ही ऐसा कदम पर 'पङ्क' नामक वणिक्सुत उसके (कङ्काली के) द्वारा

घटायी गयी सभी बातों को करके अर्थात् कम्बल आदि पहनकर कुमार्ग (सकरी गली आदि) से चला गया ॥ १२५ ॥

टिप्पणी—यहाँ यह बात भी कवि ध्वनित करता है कि 'कङ्काली' की बातों का अनुसरण करते हुये वह बालक कुमार्ग पर चलने के कारण विनष्ट हो गया ।

वेद्यालताः मरागं पूर्वं तदनु प्रलीनतनुरागम् ।

पश्चादपगतारागं पल्लवमिव दर्शयन्ति निजचरितम् ॥ १२६ ॥

वेद्यालुपी लताएँ पहले लालिमा से संयुक्त (पञ्चा०—अनुरागपूर्ण) और उसके बाद में कम लालिमा वाले (पञ्चा०—कम अनुराग वाले) तथा बाद में लालिमा से रहित (पञ्चा०—अनुराग से शून्य) पल्लव की भाँति अपने चरित को दिखलाती हैं ॥ १२६ ॥

इति समयमातृकायाः कङ्काल्या बुद्धिसंनिभागेन ।

भुत्वा वैणिजः सकलं कलावती पूर्णविमवाभूत् ॥ १२७ ॥

इस प्रकार समयमातृका—आवश्यक समय पर मातृ-पद को स्वीकार करने वाली—'कङ्काली' के बुद्धि वैमन से वैणिक् के सर्वस्य को भोग कर 'कलावती' पूर्ण सम्पत्तिशालिनी हो गयी ॥ १२७ ॥

इति बहुमिरुपायैः कूटनी कामुकानां

कृतगुह्यविहीना वञ्चनां मा कृतघ्ना (?) ।

वनधुरि मृगबन्धं हन्त पश्यन्ति नित्यं

तदपि हरिणशाराः कूटपाशं विशन्ति ॥ १२८ ॥

इसी प्रकार से शीघ्रपुण्यशाली, घृणत्र वह कूटनी विविध उपायों से कामुक व्यक्तियों की वञ्चना करती रही । रोद की बात है कि जङ्गल में बहुत से हरिण शिशु मृगों के बन्धन को निन्ध ही देखने हैं तथापि वे स्वयं भी कपट जाल में जाकर फँस जाते हैं अर्थात् वेद्याओं के जाल में फँस कर बहुत से व्यक्तियों को मरते देखकर भी लोग उनके (वेद्याओं के) कूटजाल में फँस ही जाते हैं ॥ १२८ ॥

समयेन मातृका सा कृत्रिमरूपा कृता कलावत्या ।

तन्नाम्नैव निरन्धः क्षेमेन्द्रेण प्रवदोऽयम् ॥ १२९ ॥

इति श्रीक्षेमेन्द्रकृतायां समयमातृकायां कामुकप्राति-
र्नामाष्टमः समयः ।



कलावती ने समय पर उन 'कट्हाली' को अपनी कृत्रिम माता बनाया था । अतः 'क्षेमेन्द्र' ने उसी के नाम से ही इस निबन्ध (काव्य) को लिखा है ॥ १२९ ॥

श्री क्षेमेन्द्र के द्वारा विरचित 'समय मातृका' का कामुकप्राति-
नामक यह अष्टम समय समाप्त हुआ ।



उपसंहारः

मालंकारतया विभक्तिरुचिरच्छाया विशेषाश्रया

वक्रा सादरचरणा रसमती मुग्धार्थलब्धा परम् ।

आश्रयोचितवर्णनानननवास्वादप्रमोदाचिता

वैश्या सत्कविभारतीव हरति प्रौढा कलाशालिनी ॥ १ ॥

वपमा आदि अलङ्कारों से अलङ्कृत होने से (पश्चात् सुन्दर आभूषणों को धारण करने से) सुप्रतिष्ठ विभक्ति की रुचिर विन्यस्त कान्ति-शाली (पश्चात् पत्ररचना आदि की सुन्दर कान्तिशाली), विशेषालङ्कार की आश्रयभूता (पश्चात् धनी व्यक्ति का आश्रय करनेवाली), वक्रोक्ति-पूर्ण (पश्चात् कुटिल), आदरपूर्वक मनन (चर्चण) की जानेवाली (पश्चात् आदरपूर्वक चुम्बन की जानेवाली), शृंगार आदि रसों से भली-भाँति पूर्ण (पश्चात् पूर्ण सरस), सुन्दर अर्थ से सबलित (पश्चात् भोले-भाले व्यक्तियों के घनको प्राप्त करनेवाली), आश्रय से परिपूर्ण कथानक के नवीन-नवीन आस्वाद के आनन्द से समृद्ध (पश्चात् आश्चर्यपूर्ण किसी बात के कहने से होनेवाले सर्वाथा नवीन आस्वाद के आनन्द के कारण कामुकों से मन्थित), धनुषयष्टि कलाओं से भरपूर (पश्चात् हाव-भाव आदि कलाओंवाली), वक्त्रकोटि की (पश्चात् प्रौढ यशवाली) सच्चे कवि की कविता की भाँति वैश्या किसके मन का हरण नहीं करती ? ।

संयत्नरे पञ्चविंशे पौपशुक्लादिनामरे ।

श्रीमतां भूतिरक्षाय रचितोऽयं स्मितोत्तमवः ॥ २ ॥

पञ्चमये संवत्सर मे, पौष मास के शुक्लपक्ष की प्रतिपद् तिथि को श्रीमानों की सम्पत्तिरक्षा के लिये यह प्रबन्ध रचा गया ॥ २ ॥

अट्टिच्छिद्रगिनिद्ररौद्रफणिनामयास्ति कालं कुलं

नृपस्तत्र नृपन्ति दन्तिपत्न्यः पितामहपुत्राः ।

इत्यातिप्रतिबद्धवृद्धशरीरं वर्गेण मार्गाग्रगा

यद्वैरिप्रमदाः सदा वनमहीगाढग्रहे वारिताः ॥ ३ ॥

जहाँ पर पर्वत के पत्थरों की सन्धियों में जगे हुये भयङ्कर कृष्ण सर्पों का समूह रहता है वहाँ मदनक्त हाथी निधान करते हैं। इस गुफा में सिंह रहता है। इस प्रकार दुःखी ('अनन्त' नामक राजा के शत्रुओं की स्त्रियों की दुर्दशा को देखकर दुःखी) वृद्ध शरीर (मिलनी) स्त्रियों के द्वारा, भयङ्कर जङ्गलों में छिपे निवास के समय, पैदल मार्ग पर चलनेवाली, जिसके ('अनन्त' के) शत्रुओं की स्त्रियों सर्वदा सावधान की जाती हैं ॥ ३ ॥

वीरस्यातदयाविधेयमनसः शीलव्रतालंकृते-

निस्त्रिंशः परदारकृजपविर्था यस्यैककार्यः सुहृत् ।

तस्यानन्तमहीपतेर्विरजसः प्राज्याधिराज्योदये

क्षेमेन्द्रेण सुमापितं कृतमिदं सत्पथरक्षाक्षमम् ॥ ४ ॥

इति श्रीक्षेमेन्द्रकृता समयमातृका समाप्ता ।



वीर, दुःस्त्रियों के प्रति करुणाद्रि चित्तवाले, शीलरूप व्रत से अलंकृत अर्थात् सुशील जिस राजा की शत्रुविनाशक तलवार शत्रुओं की स्त्रियों के द्वारा किये जाने वाले विजय के विधान में (समरभूमि में पतियों के मर जाने पर राजधानी की रक्षा के लिये छोड़ी गयी सेना को लेकर उनकी स्त्रियों शत्रु राजा पर विजय के लिये आक्रमण करती थीं) एकमात्र मित्र होती है, उन्हीं निष्पाप "अनन्त" महीपति के राज्याधिराज्य के समय 'क्षेमेन्द्र' के द्वारा मज्जनों के पक्ष की रक्षा करने के योग्य यह सुमापित रचा गया ॥ ४ ॥

इसप्रकार श्री क्षेमेन्द्र के द्वारा रचित समय-मातृका

समाप्त हुयी

